यूथ कॉम्पिटिशन टाइम्स कृत

उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग

UPPSC

LT Grade/GIC/GDC

इतिहास

मुख्य परीक्षा

अध्यायवार विवरणात्मक सॉल्व्ड पेपर्स

प्रधान सम्पादक

Anand K. Mahajan

लेखन सहयोग

परीक्षा विशेषज्ञ समिति

कम्प्यूटर ग्राफिक्स

बालकृष्ण, चरन सिंह, भूपेन्द्र मिश्रा

संपादकीय कार्यालय

12, चर्च लेन, प्रयागराज-211002

9415650134

Email : yctap12@gmail.com

website : www.yctbooks.com/www.yctfastbook.com/www.yctbooksprime.com

© All Rights Reserved with Publisher

प्रकाशन घोषणा

सम्पादक एवं प्रकाशक आनन्द कुमार महाजन ने लक्ष्मीनारायन प्रिंटिंग प्रेस, प्रयागराज से मुद्रित करवाकर, वाई.सी.टी. पब्लिकेशन प्रा.लि., 12, चर्च लेन, प्रयागराज-211002 के लिए प्रकाशित किया।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने में सम्पादक एवं प्रकाशक द्वारा पूर्ण सावधानी बरती गई है फिर भी किसी त्रुटि के लिए आपका सुझाव और सहयोग सादर अपेक्षित है।

₹ 695/-

किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायिक क्षेत्र प्रयागराज होगा।

विषय-सूची

■ इतिहास के स्त्रोत एवं भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की प्रमुख विशेषताएँ, ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति 5-18

■ सिन्धु घाटी सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ 19-32

■ पूर्व-वैदिक कालीन राजनीतिक अवस्था 33-41
(समाज, अर्थव्यवस्था एवं धर्म उत्तर वैदिक काल में परिवर्तन, लौह युग तथा दक्षिण भारत के महापाषाण)

■ 16 महाजनपद तथा द्वितीय नगरीकरण एवं जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म एवं शैव धर्म की प्रमुख विशेषताएँ 42-53

■ यूनानी आक्रमण तथा मौर्यकाल 54-67

■ मौर्योत्तर कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास तथा गुप्तवंश का राजनीतिक इतिहास 68-95

■ दक्षिण भारत का इतिहास एवं चोल राजवंश 96-112

■ उत्तर भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास तथा विदेशी आक्रमण 113-132

■ मध्यकालीन इतिहास के स्त्रोत एवं दिल्ली सल्तनत (राजनैतिक तथा प्रशासनिक इतिहास)................................ 133-149
कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुत्मिश, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मोहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक, तैमूर का आक्रमण, सैय्यद एवं लोदी वंश

■ मुगल वंश (स्त्रोत, राजनीतिक तथा प्रशासनिक इतिहास) 150-168
बाबर, शेरशाह सूरी, हुमायूँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब, मुगल साम्राज्य का पतन

■ बहमनी साम्राज्य, विजयनगर साम्राज्य मराठों का उदय एवं पतन, शिवाजी 169-186

■ मध्यकालीन संस्कृति 187-213
(धार्मिक नीति, सूफीवाद, भक्ति आन्दोलन, सिक्ख धर्म, कला एवं स्थापत्य, साहित्य।)

■ मध्यकालीन समाज एवं अर्थ-व्यवस्था–कृषि, उद्योग, व्यापार 214-221

■ आधुनिक भारतीय इतिहास के स्त्रोत एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विस्तार 222-235

■ आधुनिक भारत में कृषि, उद्योग-धन्धे, व्यापार 236-254

■ आधुनिक शिक्षा का विस्तार तथा संवैधानिक विकास 255-267

■ जनजाति एवं किसान आन्दोलन एवं अकाल, 1857 ई. के विद्रोह के कारण, स्वरूप, परिणाम 268-276

■ उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय पुनर्जागरण तथा सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन 277-292

■ भारतीय राष्ट्रवाद का उत्थान एवं राष्ट्रीय आन्दोलन–असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा भारत छोड़ो आन्दोलन 293-316

■ राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गाँधी, तिलक, गोखले तथा सुभाष चन्द्र बोस एवं अन्य व्यक्तियों का योगदान 317-326

■ स्वतंत्रता की प्राप्ति (क्रिप्स मिशन से माउंटबेटन योजना तक) 327-330

■ स्वतंत्रता के बाद का भारत (सन् 1950 ई. तक) 331-340

■ ऐतिहासिक प्रणाली, शोध कार्य प्रणाली तथा इतिहास लेखक 341-352

पाठ्यक्रम

LT Grade

1. भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की प्रमुख विशेषताएं।
2. सिंधु घाटी सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ:- (A) नगर नियोजन हड़प्पा एवं मोहन जोदड़ो (B) प्रस्तर मूतियों, मृणमयी मूर्तियाँ। एवं मुहरें, (C) धर्म।
3. पूर्व-वैदिक कालीन राजनीतिक अवस्था, समाज, अर्थव्यवस्था एवं धर्म। उत्तर वैदिक काल में परिवर्तन।
4. जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म, एवं शैव धर्म की प्रमुख विशेषताएं।
5. **मौर्यकालः-**(A) मौर्यो की उत्पत्ति (B) चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियाँ (C) उसका शासन-प्रबंधन तथा सार्वजनिक कार्य (D) अशोक के अभिलेख (E) अशोक का धम्म एवं धम्म प्रचार (F) उसके कल्याणकारी कार्य, (G) अशोक का मूल्यांकन (H) मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण।
6. **गुप्तवंश का राजनीतिक इतिहासः** (A) चन्द्रगुप्त-I (B) समुद्रगुप्त, (C) चन्द्रगुप्त-II(D) कुमारगुप्त-I तथा (E) स्कन्दगुप्त (F) हूण आकमण तथा उसका प्रभाव, (G) गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण।
7. **चोल कालः-** (A) राजराज प्रथम की उपलब्धियाँ (B) राजेन्द्र चोल प्रथम की उपलब्धियाँ (C) स्वायत्त स्थानीय शासन प्रणाली (D) चोलकालीन कला एवं संस्कृति
8. **विदेशी आक्रमणः-** (A) अरबों का आकमण तथा उसका प्रभाव (B) गजनवी आक्रमण एवं उसका प्रभाव (C) मोहम्मद गोरी का आक्रमण तथा उसका प्रभाव।
9. दिल्ली सल्तनत (राजनीतिक तथा प्रशासनिक इतिहास) कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन खिजली, मोहम्मद बिन तुगलक, फिरोजशाह तुगलक तैमूर का आक्रमण, सैय्यद एवं लोदी वंश।
10. मुगल वंश (राजनीतिक तथा प्रशासनिक इतिहास) बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहांगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब, मुगल साम्राज्य का पतन।
11. बहमनी साम्राज्य, विजयनगर साम्राज्य, मराठों का उदय एवं पतन, शिवाजी।
12. मध्यकालीन संस्कृति- धार्मिक नीति, सूफीवाद, भक्ति आंदोलन, कला एवं स्थापत्य, साहित्य।
13. मध्यकालीन समाज एवं अर्थ- व्यवस्था कृषि, उद्योग, व्यापार।
14. ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विस्तार।
15. आधुनिक भारत में कृषि, उद्योग-धंधे, व्यापार।
16. आधुनिक शिक्षा का विस्तार तथा संवैधानिक विकास।
17. 1857 ई. के विद्रोह के कारण, स्वरूप, परिणाम।
18. उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय पुनर्जागरण तथा सामाजिक धार्मिक आंदोलन।
19. राष्ट्रीय आंदोलन असहयोग, सविनय अवज्ञा तथा भारत छोड़ों आंदोलन।
20. राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी, तिलक, गोखले तथा सुभाष चन्द्र बोस का योगदान।
21. स्वतंत्रता की प्राप्ति किप्स मिशन से माउंटबेटन योजना तक।
22. स्वतंत्रता के बाद का भारत (सन् 1950 ई. तक)।

GIC - पाठ्यक्रम

■ प्राचीन इतिहास के साधन पुरातत्व, साहित्य एवं विदेशी विवरण।

इकाई-1

(क) पुरैतिहासिक- प्राचीन मानव और उसके उपकरण-पाषाणिक, ताम्र-पाषाणिक, कांस्य एवं लौह। **(ख) प्राक् - इतिहास-** नदी घाटी सभ्यता- हड़प्पा नगर की सभ्यता- नगर योजना, आवासीय भवन, स्वास्थ्य (नाली) व्यवस्था, विशाल स्नानागार, अन्न भण्डार, घरेलू सामग्री, साज सज्जा और वेशभूषा, वाणिज्य- व्यापार मुहरें, बंदरगाह, आस्था एवं धर्म-पशु पूजा, वृक्ष पूजा, शक्ति एवं शिव कांसे की नर्तकी, कला और कला-कृतियाँ, शव-विसर्जन विधि, मुख्य स्थल, पतन के कारण। **(ग) वैदिक संस्कृति जानने के साधन-** वैदिक संहितायें, ब्राह्मण- ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद एवं धर्मशास्त्र, वेदांग।
प्रारम्भिक वैदिक संस्कृति- सामाजिक व्यवस्था का उदय, वर्ण व्यवस्था, राजा रत्निन, विवाह, पेशा, देव एवं देवियाँ। उत्तर वैदिक संस्कृति- जाति व्यवस्था का उदय, पेशा, राजा, सभा समिति, विश, यज्ञकर्म, पुरोहित, आर्थिक व्यवस्था पणि, निष्क, कृषि एवं उद्योग।

इकाई-2

मुख्य धार्मिक आंदोलन- जैन धर्म, बौद्ध धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म।

इकाई-3

राजनीतिक इतिहास 600 ई.पू. से 1200 ई. तक षोडश महाजनपद, गणराज्य, मगध का उत्कर्ष एवं साम्राज्य की स्थापना, नंदवंश, मौर्यवंश एवं गुप्त वंश। मौर्य वंश- चन्द्रगुप्त मौर्य एवं अशोक, गुप्त वंश चन्द्रगुप्त प्रथम से स्कन्दगुप्त काल तक, मगध-साम्राज्य के पतन का कारण, विदेशी आक्रमण, परसीक, मकदुनिया के सिकन्दर, हिन्द-यवन, शक-पहलव, कुषाण, हूण। उत्तरी भारत 500 ई. से 650 ई. तक उत्तर गुप्त मौखरी वंश, हर्षवर्धन। प्रमुख स्थानीय शक्तियाँ (राजपूत युग 700 ई. से 1200 ई. शुंग-कण्व, आंध्र सातवाहन, मौखरी-पुष्यभूति, गुर्जर-प्रतिहार, चन्देल, परमार, चालुक्य, वादामी के चालुक्य, वैगी के चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट, कल्याणी के चालुक्य, पहदकल के चालुक्य, चोल।

इकाई-4

प्राचीन भारत में आर्थिक इतिहास, कृषि, व्यापार-वाणिज्य, उद्योग धंधे श्रेणी व्यवस्था, नानादेशी, सिक्का प्रणाली।

इकाई-5

प्राचीन समाज- वर्ण-जाति, आश्रम, पुरुषार्थ, संस्कार, शिक्षा।

इकाई-6

■ **कला एवं वास्तुकला-** मन्दिर, स्तूप, मूर्तिकला, चित्रकला, अन्य कलायें-हस्तकला, पात्रकला-काष्ठकला, लेखन कला (अभिलेख लिपि), स्तम्भ, चट्टान, भित्ति।

■ **मुहम्मद गोरी का आक्रमण दासवंश-** खिलजी वंश, तुगलक वंश, सैयद वंश, लोदी वंश, बाबर मुगल साम्राज्य निर्माता के रूप में हुमायूँ तथा शेरशाह सूरी। मुगल साम्राज्य का विस्तार अकबर से औरंगजेब तक, मुगल साम्राज्य का पतन, मुगलों की शासन व्यवस्था और आर्थिक नीति, बहमनी और विजय नगर का प्रशासन, शिवाजी और मराठों का उत्कर्ष तथा पतन।

■ **शासन व्यवस्था-** दिल्ली सल्तनत की शासन व्यवस्था, मुगलों की शासन व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ, मुगल कालीन संस्कृति, प्रान्तीय शासन, शेरशाह सूरी की शासन-व्यवस्था। भूमिकर व्यवस्था शेरशाह सूरी और अकबर की भूमिकर व्यवस्था।
● मुगलों की धार्मिक नीति, बाबर की धार्मिक नीति हुमायूँ और अकबर की धार्मिक नीति, दीने इलाही, जहांगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब की धार्मिक नीति मुगलों की दक्षिणी नीति, बाबर से औरंगजेब तक। मुगल सभ्यता और संस्कृति, शिक्षा, स्त्री शिक्षा- साहित्य, कला, चित्रकला, वास्तुकला, संगीत कला। ● सैनिक व्यवस्था अकबर की मनसबदारी व्यवस्था जात, सवार और मराठों की सैन्य व्यवस्था। मुगल कालीन समाज सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक व्यवस्था उद्योग-धंधे। 17वीं, 18वीं शताब्दी में भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों का आगमन। डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी।

■ **बंगाल में अंग्रेजी शक्ति का उदय-** प्लासी का युद्ध, बक्सर का युद्ध तथा उसका महत्व। क्लाइव की दूसरी सूबेदारी (1765-67) बंगाल व्यवस्था- दोहरी प्रणाली के गुण और दोष। वारेन हेस्टिंग्स- (1772-85) प्रशासनिक सुधार, भूमिकर सुधार, न्यायिक सुधार। कार्नवालिस के प्रशासनिक सुधार (1786-93)- कर संबंधी सुधार, बंगाल की स्थायी भू-कर व्यवस्था। लार्ड वेलेजली- (1798-1805) सहायक संधि प्रणाली। मैसूर का उत्थान- हैदर अली तथा टीपू सुल्तान- ● प्रथम आंग्ल- मैसूर युद्ध ● द्वितीय आंग्ल-मैसूर युद्ध ● तृतीय आंग्ल- मैसूर युद्ध ● चतुर्थ आंग्ल- मैसूर युद्ध

■ लार्ड हेस्टिंग्स और भारत में सर्वश्रेष्ठता का स्थापित होना। आंग्ल-नेपाल युद्ध, पिण्डारी युद्ध, हेस्टिंग्स की मराठा नीति। विलियम बैंटिंग (1828-35) सती प्रथा को बंद करना, सामाजिक सुधार, शैक्षणिक सुधार, वित्तीय सुधार, लार्ड मैकाले की शिक्षा नीति।

■ **रणजीत सिंह का जीवन और उपलब्धियाँ:-** प्रारम्भिक जीवन, प्रशासन, भू-कर तथा सैनिक प्रशासन। लार्ड डलहौजी- (1848-56)- व्यपगत का सिद्धांत, अवध का विलय, लार्ड डलहौजी के सुधार। 1857 का विद्रोह- विद्रोह के कारण। भू- राजस्व व्यवस्था- स्थायी जमींदारी व्यवस्था, महालवाड़ी पद्धति, रैयतवाड़ी पद्धति

■ **लार्ड कर्जन-** (1899-1905)- बंगाल का विभाजन। सांस्कृतिक जागरण, सामाजिक और धार्मिक सुधार, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, राम कृष्ण आंदोलन, थियोसोफिकल आंदोलन, मुस्लिम सुधार आंदोलन, वहाबी, आंदोलन, अलीगढ़ आंदोलन। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का उत्थान और विकास, उदारवादी दल की नीतियों का मूल्यांकन, उग्रवाद के उदय के कारण, होमरूल आंदोलन, क्रांतिकारी आतंकवादी आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, स्वतंत्रता आंदोलन में गांधी जी का मूल्यांकन।

■ **भारतीय के अग्रगण्य राष्ट्रीय नेता-** राम मोहन राय उनके कार्य का मूल्यांकन और विचार, दादा भाई नौरोजी 1825-1917, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू। मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय-सर सैयद अहमद खाँ, मुस्लिम लीग की स्थापना, दो राष्ट्र का सिद्धांत हिन्दू महासभा, माउन्ट बैटन योजना, भारत विभाजन। **संविधान-** ● 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट ● 1784 का पिट्स का इण्डिया एक्ट ● 1833 का चार्टर एक्ट ● 1909 का एक्ट ● 1919 का एक्ट ● 1935 का एक्ट ● **स्वतंत्रता का प्रथम चरण-** भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947, रियासतों का एकीकरण और विलय, महात्मा गांधी की हत्या। पंचवर्षीय योजनायें-पड़ोसी देशों से सम्बन्ध। पाकिस्तान, चीन, चीनी आक्रमण 1962 एवं बांग्लादेश।

GDC - पाठ्यक्रम

■ **स्रोत संबंधी वार्ताः** पुरातत्वीय स्रोत, पुरालेख विद्या तथा मुद्राशास्त्र की जानकारी। पुरातत्वीय स्थलों का काल निर्धारण। साहित्यिक स्रोतः स्वदेशी साहित्यः धार्मिक और धर्म निरपेक्ष साहित्य, मिथक, दंत कथाएं आदि। विदेशी विवरणः यूनानी, चीनी और अरबी विद्वान। प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमिः पूर्व पाषाण काल, मध्य पाषाण काल, नव पाषाण और ताम्र पाषाण युग अधिवासन, वितरण, औजार और विनिमय का ढाँचा।

■ **सिंधु/हड़प्पा की सभ्यताः** उद्भ, विस्तार सीमा, मुख्य स्थल, अधिवास का स्वरूप,शिल्प विशिष्टता, धर्म, समाज और राज्य शासन विधि, सिंधु घाटी सभ्यता का ह्रास, आन्तरिक और बाहरी व्यापार, भारत में प्रथम शहरीकरण।

■ **वैदिक तथा उत्तर वैदिक युगः** आर्यो से संबंधित विवाद राजनीतिक तथा समाजिक संस्थाएं, राज्य संरचना और राज्य के सिद्धांतः वर्ण और सामाजिक स्तरीकरण का उद्भव, धार्मिक और दार्शनिक विचार। लौह प्रौद्योगिकी का प्रारम्भ, दक्षिण भारत के महापाषाण।

■ **राज्य शासन व्यवस्था का विस्तारः** महाजनपद, राजतन्त्रीय और गणतन्त्रीय राज्य, आर्थिक और सामाजिक विकास और छठी शताब्दी ई.पू. में द्वितीय शहरीकरण का उद्भव, जैन धर्म और बौद्ध धर्म।

इकाई-2

■ **राज्य से साम्राज्य तकः** मगध का उत्थान, सिकन्दर के अधीन यूनानी आक्रमण और इसके प्रभाव, मौर्यों का प्रसार, मौर्यों की राज्य व्यवस्था, समाज, अर्थव्यवस्था, अशोक का धम्म और उसकी प्रकृति, मौर्य साम्राज्य का ह्रास और विघटन, मौर्य साम्राज्य के पतन में अशोक की भूमिका, मौर्य कालीन कला और वास्तुकला, अशोक के राज्यादेश भाषा और लिपि।

■ **साम्राज्य का अंत और क्षेत्रीय ताकतों का उद्भवः** इंडो-यूनानी, शुंग, सातवाहन, कुषाण और शक-क्षत्रप, खारवेल, संगम साहित्य, संगम साहित्य में प्रतिबिम्बित दक्षिण भारत की राज्य शासन प्रणाली और समाज। खारवेलः मौर्योत्तर काल में कला और वास्तुकला, गांधार, मथुरा और अमरावती शैलियां, दूसरी शताब्दी ई.पू. से तीसरी शताब्दी ई. तक व्यापार और वाणिज्य, रोमन जगत के साथ व्यापार।

■ **गुप्त वाकाटक युगः** राज्य शासन व्यवस्था और समाज, कृषि अर्थव्यवस्था, भू-अनुदान, भू राजस्व और भू-अधिकार, गुप्तकालीन सिक्के। मन्दिर स्थापत्य कला का प्रारम्भ, संस्कृत भाषा और साहित्य का विकास, विज्ञान प्रौद्योगिकी, खगोल विज्ञान, गणित और औषधि में विकास स्वर्ण युग की अवधारणा। हर्ष और उसका युगः प्रशासन और धर्म।

इकाई-3

■ **क्षेत्रीय राज्यों का उदभवः** दक्षिण के राज्यः गंग, कदंब वंश, पश्चिमी और पूर्वी चालुक्य वंश, राष्ट्रकूट, कल्याणी चालुक्य, काकतीय, होयसल और यादव वंश। दक्षिणी भारत के साम्राज्यः पल्लव, चेर, चोल और पाण्ड्य वंश।

■ **पूर्वी भारत के साम्राज्यः** बंगाल के पाल और सेन।

■ **पश्चिम भारत के साम्राज्यः** बल्लभी के मैत्रक और गुजरात के चालुक्य वंश।

■ **उत्तर भारत के साम्राज्यः** गुर्जर प्रतिहार, कलचुरी-चेदि, गहड़वाल वंश और परमार वंश। प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत की विशेषताएं: प्रशासन और राजनीतिक ढांचा, राजतंत्र का वैधीकरण।

■ **कृषि अर्थव्यवस्थाः** भूमि अनुदान, उत्पादन सम्बन्धी बदलते सम्बन्धः श्रेणीबद्ध भूमि अधिकार और किसान वर्ग, जल संसाधन, कर प्रणाली, सिक्के और मुद्रा प्रणाली, सामन्तवाद। व्यापार और शहरीकरणः व्यापार का ढाँचा और शहरी बस्तियों का स्वरूप, पत्तन और व्यापार मार्ग व्यापारी माल और विनिमय, **व्यापार संघ (गिल्ड):** दक्षिण-पूर्व एशिया में व्यापार और उपनिवेशीकरण।

■ **ब्राह्मणीय धर्मों का विकासः** वैष्णव धर्म और शैव धर्मः तमिल भक्ति आंदोलन-शंकर, माधव और रामानुजाचार्य। मन्दिर स्थापत्य कला और क्षेत्रीय शैलियाँ। समाजः वर्ण, जाति और जातियों का प्रचुरोद्भव, स्त्रियों की स्थिति, लिंड्ग, विवाह और सम्पत्ति सम्बन्ध। किसानों के रूप में जनजातियों और वर्ण व्यवस्था में उनका स्थान, अस्पृश्यता।

■ **शिक्षा और शैक्षिक संस्थाएं:** शिक्षा के केन्द्रों के रूप में अग्रहार, मठ और महाविहार।

इकाई-4

■ **मध्यकालीन भारतीय इतिहास के स्रोतः** पुरातत्वीय, पुरालेखीय और मुद्रा शास्त्रीय स्रोत, भौतिक साक्ष्य और स्मारकः इतिवृतः साहित्यिक स्रोत-फारसी, संस्कृत और क्षेत्रीय भाषाएं, दफ्तर खानाः फरमान, बहियां। पोथियां/अखबार, विदेशी यात्रियों के वृतांत-फारसी और अरबी, अल्बरूनी का यात्रा विवरण।

■ **राजनीतिक घटनाएं-** गजनवी विजय, गोरी का आक्रमण, दिल्ली सल्तनत-तुर्क, खिजली, तुगलक, सैय्यद और लोदी। दिल्ली सल्तनत का ह्रास।

■ **मुगल साम्राज्य की नींव-** बाबर, हुमायूँ और सूरी वंशः अकबर से औरंगजेब तक प्रसार और सुदृढ़ीकरण। मुगल साम्राज्य का पतन। उत्तर कालीन मुगल शासक और मुगल साम्राज्य का विघटन। विजयनगर और बहमनी- दक्षिण सल्तनत, बीजापुर, गोलकुंडा, **बीदर, बरार और अहमदनगर-** उत्थान, प्रसार और विघटन, पूर्वी गंग और सूर्यवंशी गजपति। मराठों का उत्थान और शिवाजी द्वारा स्वराज की स्थापना, पेशवाओं के अधीन उसका विस्तारः मुगल-मराठों के सम्बन्ध, मराठा राज्य संघ, पतन के कारण।

इकाई-5

■ **प्रशासन और अर्थव्यवस्थाः** सल्तनत के समय में प्रशासन, राज्य का स्वरूप-धर्मतन्त्रीय और ईशकेन्द्रित, केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय प्रशासन उत्तराधिकार का नियम। शेरशाह सूरी के प्रशासनिक सुधार, मुगल प्रशासन-केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय। मनसबदारी और जागीरदारी पद्धतियां।

दक्षिण में प्रशासनिक प्रणाली- विजयनगर राज्य और शासन व्यवस्था, बहमनी प्रशासनिक प्रणाली, मराठा प्रशासन- अष्ट प्रधान। कृषि उत्पादन और सिंचाई व्यवस्था, ग्राम अर्थव्यवस्था, किसान वर्ग, अनुदान और कृषि ऋण। शहरीकरण और जनांकिकीय ढांचा।

■ **उद्योग-** सूती कपड़ा, हस्तशिल्प, कृषि आधारित उद्योग, संगठन, कारखाने और प्रौद्योगिकी। व्यापार और वाणिज्य- राज्य नीतियां, आंतरिक और बाह्य व्यापार, यूरोपीय व्यापर, व्यापार केन्द और पत्तन, परिवहन और संचार। हुंडी (विनिमय पत्र) और बीमा, राज्य की आय और व्यय, मुद्रा, टकसाल प्रणाली, दुर्भिक्ष और किसान विद्रोह।

इकाई-6

■ **समाज और संस्कृतिः** सामाजिक संगठन और सामाजिक संरचना।

सूफी- उनके सिलसिले, विश्वास और प्रथाएं, प्रमुख सूफी संत, सामाजिक समन्वय। भक्ति आंदोलन-शैव, वैष्णव,भाक्त।

■ **मध्यकालीन युग के संत-** उत्तर और दक्षिण के संत, सामाजिक-राजनीतिक और धार्मिक जीवन पर उनका प्रभाव मध्यकालीन भारत की स्त्री संत।

सिक्ख आंदोलन- गुरुनानक देव और उनकी शिक्षायें, आदिग्रंथ; खालसा।

■ **सामाजिक वर्गीकरणः** शासक वर्ग, प्रमुख धार्मिक समूह, उलेमा, वणिक और व्यावसायिक वर्ग- राजपूत समाज।

■ **ग्रामीण समाज-** छोटे सामन्त, ग्राम कर्मचारी, कृषक और गैर कृषक वर्ग शिल्पकार।

■ **स्त्रियों की स्थिति-** जनाना व्यवस्था-देवदासी व्यवस्था।

शिक्षा का विकास, शिक्षा केन्द्र और पाठ्यक्रम, मदरसा शिक्षा।

■ **ललित कलाएं-** चित्रकारी की प्रमुख भौलियां- मुगल, राजस्थानी, पहाड़ी, गढ़वालीः संगीत का विकास। कला और वास्तुकला, इंडो- इस्लामी वास्तुकला, मुगल वास्तुकला, क्षेत्रीय वास्तुकला की शैलियां।

इंडो- आरबी वास्तुकला, मुगल उद्यान, मराठा दुर्ग, पूजा गृह और मन्दिर।

इकाई-7

■ **आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतः** अभिलेखागारीय सामग्री, जीवनचरित और संस्मरण, समाचार पत्र, मौखिक साक्ष्य, सृजनात्मक साहित्य और चित्रकारी, स्मारक, सिक्के। ब्रिटिश सत्ता का उत्थानः 16 वीं से 18 वीं शताब्दी के दौरान भारत में यूरोपीय व्यापारी- पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और ब्रिटिश। भारत में ब्रिटिश आधिपत्य क्षेत्र (डोमिनियन) की स्थापना और विस्तार। भारत के प्रमुख राज्यों के साथ ब्रिटिश सम्बन्ध-बंगाल, अवध, हैदराबाद, मैसूर, कर्नाटक और पंजाब। 1857 का विद्रोह, कारण, प्रकृति और प्रभाव।

■ **कम्पनी और ताज (क्राउन) का प्रशासनः** ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन केन्द्रीय तथा प्रान्तीय ढांचे की उत्पत्ति एवं क्रमिक विकास (1773-1858)। कम्पनी के शासन काल में सर्वोच्च सत्ता, सिविल सर्विस, न्यायतंत्र, पुलिस और सेना; ताज (क्राउन) के अधीन रजवाड़ों की रियासतों में सर्वोच्च सत्ता के प्रति ब्रिटिश नीति।

■ स्थानीय स्व-सरकार। ■ संवैधानिक परिवर्तन, 1909-1935।

इकाई-8

■ कृषि का विस्तार तथा वाणिज्यीकरण, भू अधिकार, भू बंदोबस्त, ग्रामीण ऋणग्रस्तता, भूमिहीन श्रम, सिंचाई और नहर व्यवस्था।

■ उद्योगों का ह्रास- शिल्पकारों की बदलती सामाजिक-आर्थिक स्थितियां, वि-औद्योगीकरण वि-नगरीकरण; आर्थिक अपवहन; विश्व युद्ध और अर्थव्यवस्था।

■ **ब्रिटिश औद्योगिक नीति;** मुख्य आधुनिक उद्योग; कारखाना कानून का स्वरूप; श्रम और मजदूर संघ आंदोलन। मौद्रिक नीति, बैंकिंग, मुद्रा और विनिमय, रेलवे तथा सड़क परिवहन, संचार-डाक और टेलीग्राफ।

■ **नूतन शहरी केन्द्रों का विकास;** नगर आयोजन और स्थापत्य की नूतन विशेषताएं, शहरी समाज और शहरी समस्याएं। अकाल, महामारी और सरकारी नीति। जनजाति और किसान आंदोलन।

■ **संक्रमणकाल में भारतीय समाजः** ईसाई धर्म से सम्पर्क- ईसाई मिशन और मिशनरी, भारत की सामाजिक एवं आर्थिक प्रथाओं और धार्मिक धारणाओं की समालोचना, शैक्षिक तथा अन्य गतिविधियां।

■ **नई शिक्षा-** सरकारी नीति, स्तर और विषयवस्तु, अंग्रेजी भाषा, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, लोक स्वास्थ्य एवं औषधि- आधुनिकतावाद की ओर।

■ **भारतीय पुनर्जागरण-** सामाजिक धार्मिक सुधार, मध्यम वर्ग का उद्भव, जातिगत संगठन और जातीय गतिशीलता।

■ **स्त्रियों से संबंधित प्रश्न-** राष्ट्रवादी चर्चा; स्त्रियों के संगठन, स्त्रियों से सम्बन्धित ब्रिटिश कानून, लिंग पहचान एवं संवैधानिक स्थिति।

● प्रिंटिंग प्रेस- पत्रकारिता संबंधी गतिविधि तथा लोकमत। भारतीय भाषाओं और साहित्यिक विधाओं का आधुनिकीकरण-चित्रकारी, संगीत और प्रदर्शन कलाओं का पुनर्स्थापन।

इकाई-9

■ **भारतीय राष्ट्रवाद का उत्थानः** राष्ट्रवाद का सामाजिक एवं आर्थिक आधार।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सिद्धांत और कार्यक्रम, 1885-1920: प्रारम्भिक राष्ट्रवादी, स्वाग्रही राष्ट्रवादी और आंदोलकारी।

● स्वदेशी और स्वराज। ● गांधीवादी जन आंदोलन, सुभाष चंद्र बोस और आई.एन.ए. राष्ट्रीय आंदोलन में मध्य वर्ग की भूमिका राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्रियों की भागीदारी।

● वामपंथी राजनीति; दलित वर्ग आंदोलन और साम्प्रदायिकता। ● भारत की स्वतंत्रता और विभाजन। ● स्वतंत्रता के पश्चात् भारत विभाजन की चुनौतियां, भारतीय रजवाड़ों की रियासतों का एकीकरण, कश्मीर, हैदराबाद तथा जूनागढ़।

■ **बी.आर.अम्बेडकर**- भारतीय संविधान का निर्माण, इसकी विशेषाएं।

● अधिकारी वर्ग का ढांचा। ● नई शिक्षा नीति। ● आर्थिक नीतियाँ और नियोजन प्रक्रिया; विकास, विस्थापन और जनजातीय मुद्दे। ● राज्यों का भाषाई पुनर्गठन; केन्द्र राज्य सम्बन्ध। ●विदेश नीति सम्बन्धी पहल-पंचशील, भारतीय राजनीति की गत्यात्मकताः आपातकाल, उदारीकरण, भारतीय अर्थव्यवस्था का निजीकरण तथा वैश्वीकरण।

इकाई-10

● ऐतिहासिक प्रणाली, शोध कार्य प्रणाली तथा इतिहास लेखनः ● इतिहास- स्वरूप, विषय विस्तार की सीमा और महत्व। ● इतिहास में वस्तुनिष्ठता और पूर्वाग्रह, इतिहास में कारण-कार्य-सम्बन्ध और कल्पना। ● अन्वेषणात्मक संक्रिया, इतिहास में आलोचना, संश्लेषण तथा प्रस्तुति। ● इतिहास और इसके सहायक विज्ञानः विज्ञान, कला इतिहास या सामाजिक विज्ञान। ● क्षेत्रीय इतिहास का महत्व। ● शोध कार्यप्रणाली और इतिहास में प्राक्कल्पना। ● प्रस्ताविक शोध का क्षेत्र।

स्रोत- आंकड़ों का संग्रह प्राथमिक/द्वितीयक, मूल तथा पारगमनीय स्रोत।

● इतिहास शोध में आधुनिक प्रवृत्तियाँ एवं भारतीय इतिहास लेखन। ● इतिहास में विषय का चयन। ● थीसिस/शोध प्रबन्ध और निर्दिष्ट कार्य को पूरा करनाः योजना, संदर्भ ग्रंथ सूची बनाने की विधि, पाद टिप्पणी, सम्पादन, शोध प्रबंधन का अंतिम प्रारूप। ● साहित्यिक चोरी, बौद्धिक बेईमानी और इतिहास लेखन। ● एतिहासिक लेखन का प्रारम्भ-यूनानी, रोमन एवं गिरजाघर संबंधी इतिहास लेखन। ● पुनर्जागरण और इतिहास लेखन पर इसका प्रभाव। ● इतिहास लेखन के नकारात्मक तथा सकारात्मक समर्थक। ● इतिहास लेखन में बर्लिन क्रांति- वी. रांके। ● इतिहास का मार्क्सवादी दर्शन- वैज्ञानिक भौतिकवारद। ● इतिहास का चक्रीय सिद्धांत- औसवाल्ड स्पेंगलर। ● चुनौती एवं प्रत्युत्तर सिद्धांत-अर्नोल्ड जोसफ टॉयनबी। ● इतिहास में उत्तर- आधुनिकतावाद। ● जननैतिकता परिभाषा एवं महत्व। ● सर्वसुलभ प्रकाशनः अवधारणा, पहचान, पूर्ववर्ती प्रकाशन और पत्रिकाएं।

01.

इतिहास के स्त्रोत एवं भारतीय प्रागैतिहासिक संस्कृतियों की प्रमुख विशेषताएँ, ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति

प्रश्न : Briefly analyse the chalcolithic cultures of North India.
उत्तर भारत की ताम्रपाषाणीय संस्कृतियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए। **UPPCS GIC Mains 2020**

उत्तर : ताम्रपाषाणीय संस्कृति (2000BC के पश्चात) उस संस्कृति का द्योतक है, जिसमें मानव पत्थर के औजारों के साथ-साथ अत्यधिक मात्रा में तांबे के औजार का प्रयोग करने लगा था।

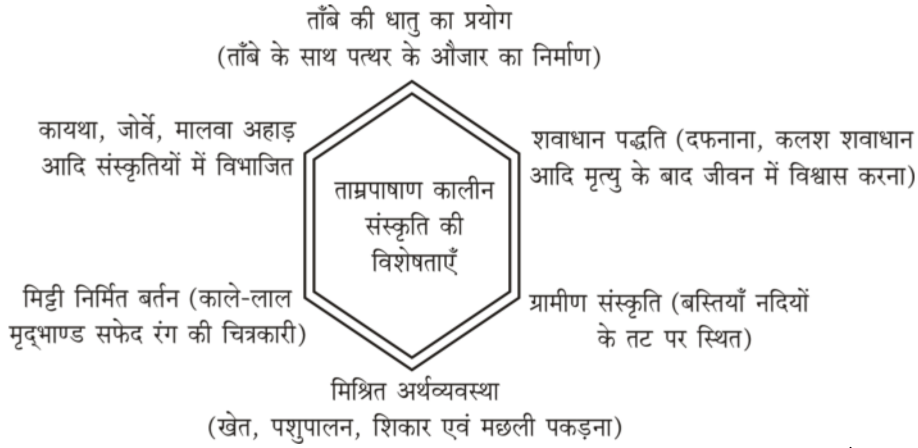

इस संस्कृति का विस्तार दक्षिण-पूर्वी राजस्थान (अहाड़ एव गिलुन्द), पश्चिमी मध्य प्रदेश (मालवा, कायथा और एरण), पश्चिमी महाराष्ट्र और दक्षिणी पूर्वी भारत तक था। सर्वाधिक उत्खनन महाराष्ट्र राज्य में हुआ। अहमदनगर के जोर्वे, नेवासा व दैमाबाद, पुणे में सोनगाँव एवं इनामगाँव आदि।

इस काल के लोग गेहूँ, चावल तथा दाल आदि की खेती करते थे तथा पशुपालन भी करते थे। इस संस्कृति के लोग वस्तु निर्माण से परिचित थे।

यह संस्कृति लगभग 1500 वर्षों तक समृद्ध रही लेकिन धीरे-धीरे इस संस्कृति का अवसान हो गया। ताम्रपाषाण काल के पश्चात कांस्य एवं लौहयुगीन संस्कृतियों का उदय हुआ और प्राचीन भारत में ग्रामीण संस्कृति के पश्चात शहरी जीवन का प्रारम्भ हुआ।

प्रश्न : भारत की नवपाषाणिक संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं तथा तिथिक्रम का विवेचन कीजिए।
UPPCS Mains 2019 (I)

उत्तर– नवपाषाण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सर जॉन लुब्बाक ने अपनी पुस्तक 'प्री-हिस्टारिक टाइम्स' में किया। **गॉर्डन चाइल्ड** ने नवपाषाण काल को 'नवपाषाण क्रांति' व 'अन्न उत्पादक संस्कृति' कहा। विश्वस्तरीय सन्दर्भ में नवपाषाण युग की शुरुआत **9000 ई.पू.** में हुई, लेकिन भारत में मेहरगढ़ के अपवाद को छोड़कर इसकी शुरुआत 4000 ई.पू. मानी जाती है।

नवपाषाण काल के कई प्रकार के उपकरण मिले हैं। इनमें पॉलिशदार कुल्हाड़ी, बसुला, सेल्ट, छेनी, हथौड़ा, मूसल, ओखली, बाणाग्र, आरियां आदि हैं। इनमें से सर्वाधिक प्राप्त नवपाषाणिक उपकरण पॉलिशदार कुल्हाड़ी है। नवपाषाण काल को औज़ारों की तकनीक में नवीन प्रयोग का काल माना जाता है। घिसाईदार, पॉलिशदार आदि पाषाण औज़ारों के निर्माण तथा खाद्य उत्पादन के आरम्भ से नवपाषाण काल अभिन्न रूप से जुड़ा है।

मृदभाण्ड का आविष्कार, अपेक्षाकृत स्थायी जीवनशैली, लघु तथा आत्मनिर्भर गाँवों का विकास, लिंग पर आधारित श्रम विभाजन आदि नवपाषाण काल की विशेषताएं हैं। नवपाषाण काल में मनुष्य खाद्य संग्राहक से खाद्य उत्पादक हो गया इससे अपेक्षाकृत आबादी स्थायी हुई। जिसने जनसंख्या की वृद्धि को बढ़ावा दिया और इस जनसंख्या वृद्धि ने वर्ग विभाजन को बढ़ावा दिया। नवपाषाण काल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रकाश में आयी, जिसने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को आरम्भ किया, जिससे शिल्पों में विशेषज्ञता आयी। सम्भवतः राजनीतिक संस्थाओं की शुरुआत भी इसी काल में हुई होगी।

1842 में कर्नाटक के मैसूर से लिंग-सुगूर नामक स्थान से नवपाषाणिक उपकरण मिले हैं। 1860 ई. में इलाहाबाद जिले में स्थित टोंस नदी घाटी में पॉलिशदार सेल्ट प्राप्त कर सर्वप्रथम नवपाषाण स्थल की खोज की गयी। कई नवपाषाणकालीन स्थलों की खोज की गयी जिसमें, बुर्जहोम, गुफकराल, कोल्डिहवा, महगढ़ा, उत्नूर पिक्लीहल, ब्रह्मगिरी, मास्की आदि स्थल प्रमुख हैं।

वस्तुतः इन खोजे गए स्थलों की कुछ प्रमुख विशेषताएं भी प्राप्त होती हैं, जैसे- बुर्जहोम में गर्त आवास के साक्ष्य मिले हैं और साथ ही शवों को पालतू कुत्ते के साथ यहाँ दफनाया गया है। कोल्डिहवा से चावल के कृषि का प्राचीनतम साक्ष्य मिला है। दक्षिण भारत से ओपदार प्रस्तर कुल्हाडियाँ, धूसर एवं काले रंग के मृदभाण्ड तथा बाँस–बल्ली से निर्मित गोलाकार झोपड़ियाँ मिली हैं।

प्रश्न : भारतीय ताम्र-पाषाण युग की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कीजिए। **UPPCS Mains 2018 (I)**

उत्तर : नवपाषाण युग का अन्त होते-होते धातुओं का इस्तेमाल शुरू हो गया। सबसे पहले तांबे का प्रयोग हुआ। तांबे व पत्थर के उपकरणों का साथ-साथ प्रयोग हुआ जो कई संस्कृतियों का आधार बना। जिसे ताम्रपाषाणिक संस्कृति अथवा कैल्कोलिथिक कल्चर कहा जाता है। जिसका अर्थ है-पत्थर और तांबे के प्रयोग की अवस्था। ताम्र-पाषाण युग के लोग अधिकांशतः पत्थर व तांबे की वस्तुओं का प्रयोग करते थे। प्रमुख ताम्रपाषाणिक संस्कृतियाँ इस प्रकार है-

अहाड़ संस्कृति	– 2800 ई.पू. – 1500 ई.पू.
कायथा संस्कृति	– 2450 ई.पू. – 1700 ई.पू.
सावलदा संस्कृति	– 2300 ई.पू. – 2000 ई.पू.
प्रभास संस्कृति	– 2000 ई.पू. – 1400 ई.पू.
मालवा संस्कृति	– 1900 ई.पू. – 1400 ई.पू.
रंगपुर संस्कृति	– 1700 ई.पू. – 1400 ई.पू.
जोर्वे संस्कृति	– 1500 ई.पू. – 900 ई.पू.

सम्पूर्ण भारत में ग्रामीण कृषक समुदायों का गठन ताम्रपाषाणिक युग में हुआ। इसी काल में आधुनिक भारतीय ग्रामीण समाज की नींव पड़ी। आधुनिक कर्मकाण्ड और आचार-व्यवहारों का ढांचा भी इसी काल की देन है। धर्म के द्वारा सभी ताम्र-पाषाणिक संस्कृतियाँ आपस में जुड़ी थी। उनमें मातृदेवी और बृषभ की पूजा प्रचलित थी। मालवा में वृषभ पूजा का बोलबाला था। उत्तरकालीन जोर्वे संस्कृति के स्थल इनामगाँव के पुरा स्थल पर अनेक सिरकटी छोटी-छोटी मूर्तियां मिली हैं। महाराष्ट्र में मृतक को उत्तर-दक्षिण दिशा में रखा जाता था, किन्तु दक्षिण भारत में पूरब-पश्चिम दिशा में। ताम्र-पाषाणिक संस्कृतियों की सबसे प्रमुख विशेषता उनके विशिष्ट प्रकार के चित्रित मृदभाण्ड हैं। कायथा संस्कृति अपने उन लाल मजबूत लेप वाले मृदभाण्डों के लिए प्रसिद्ध है, जिन पर चाकलेटी रंग से तरह-तरह के चित्र बने हुए हैं। कायथा संस्कृति हड़प्पा संस्कृति की कनिष्ठ समकालीन मानी जाती है। यहाँ के कुछ मृदभाण्डों पर प्राक्-हड़प्पीय प्रभाव तथा कुछ पर हड़प्पाई प्रभाव दिखाई पड़ता है।

दक्षिण-पूर्वी राजस्थान में दो स्थलों की खुदाई हुई है- एक अहार/अहाड में दूसरा गिलुन्द/गिलुन्ड में, ये स्थल बनास घाटी के सूखे अंचलों में है। अहार का प्राचीन नाम ताम्बवती है अर्थात तांबा वाली जगह। ताम्बवती का स्थानीय केन्द्र गिलुन्द को माना जाता है। अहार से काले व लाल मृदभाण्ड प्राप्त हुए हैं जिन्हें सफेद रैखिक चित्रों से सजाया गया है। यहाँ से पालतू भैस, बकरियां, भेंड, सुअर के प्रमाण मिले हैं। चावल, ज्वार, बाजरा आदि की खेती की जाती थी। अहार के उत्तर-पूर्व स्थित गिलुन्द में घरों के ढांचों के अवशेष प्राप्त हुए हैं, यहाँ से पत्थर के फलकों का उद्योग भी प्राप्त हुआ है।

नर्मदा के दक्षिण तट पर स्थित नवदाटोली स्थल की प्रमुख ताम्रपाषाणिक विशेषता चित्रित काले व लाल मृदभाण्ड हैं ये विशिष्ट प्रकार के लाल पॉलिस वाले मृदभाण्ड हैं जिन्हें काले रंग के चित्रों से सजाया गया है।

यद्यपि जोर्वे संस्कृति ग्रामीण थी, फिर भी इसकी कई बस्तियाँ जैसे दैमाबाद और इनामगांव नगरीकरण के स्तर तक पहुंच सी गयी थी। ताम्रपाषाणिक संस्कृति के लोग पत्थर के औजारों के साथ-साथ ताबें के भी औजारों का प्रयोग करते थे। ताम्रपाषाण के लोग विभिन्न प्रकार के मृदभाण्डों का प्रयोग करते थे, मृदभाण्ड चाक पर बनते थे। वे मंवेशी पालते थे, खेती करते थे, हिरन का शिकार करते थे। ताम्रपाषाणिक लोग कला और शिल्प कर्म में दक्ष थे पत्थर का काम भी अच्छा करते थे।

ताम्रपाषाणिक संस्कृति तत्वतः ग्रामीण पृष्ठभूमि पर खड़ी थी। इसके जीवन की सारी अवधि में तांबा सीमित मात्रा में ही उपलब्ध रहा। लोग तांबे में टिन को मिश्रित करके कांसा बनाना नहीं जानते थे। ताम्रपाषाण युग के लोग लिखने की कला नहीं जानते थे, और न ही वे नगरों में रहते थे। जबकि कांस्य युग के लोग नगरवासी हो गये थे। ताम्र-पाषाणिक सभ्यता के सभी तत्व जो अधिकांशतः भारतीय उपमहाद्वीप के सिंधु क्षेत्र में विद्यमान थे, उम्र में सिंधु घाटी सभ्यता से छोटी है, फिर भी ये संस्कृतियाँ सिंध के लोगों के उन्नत तकनीकी ज्ञान से कोई ठोस फायदा नहीं उठा पाये।

प्रश्न : प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन के लिए धर्मशास्त्र ग्रंथों के महत्व का विवेचन कीजिए?

UPPCS Mains Exam-2020 (I)

उत्तर : प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन के लिए 2 महत्वपूर्ण स्रोत हैं- पुरातात्विक और साहित्यिक स्रोत। साहित्यिक स्रोत धार्मिक और धर्मेत्तर साहित्य के रूप में हैं। धार्मिक साहित्य में धर्मशास्त्र ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है।

धर्मसूत्र, स्मृतियाँ और टीकाएँ इन तीनों का संयुक्त रूप धर्मशास्त्र हैं धर्मसूत्रों का संकलन 500-200 ई. पू. के बीच हुआ हैं प्रमुख धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र, आपस्तम्भ धर्मसूत्र, वशिष्ठ धर्मसूत्र, बौद्धायन धर्मसूत्र आदि हैं। इन धर्मसूत्रों में धर्म के 3 स्रोत बताए गए हैं- श्रुति, स्मृति और सदाचार। आश्वलायन गृहसूत्र में सर्वप्रथम 8 प्रकार के विचारों का उल्लेख मिलता है।

स्मृतियों की रचना की शुरुआत लगभग 2BC से मानी जाती है। ज्यादातर स्मृति, ग्रंथ पद्य में हैं प्रमुख स्मृतियों में याज्ञवाल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, बृहस्पति स्मृति, कात्यायन स्मृति, मनु स्मृति, विष्णु स्मृति आदि हैं। स्मृतियों की संख्या 18 मानी गयी है। इन स्मृतियों का ज्यादातर भाग, वर्ण व्यवस्था दायभाग, परिवार, पूजा पाठ आदि पर केन्द्रित है।

विभिन्न स्मृतियों और स्वतंत्र ग्रंथों पर विभिन्न कालखण्डों में विभिन्न टीकाएँ लिखी गयी हैं। ये टीकाएँ भी धर्मशास्त्र का एक भाग हैं।

मनुस्मृति पर टीका भारुचि, मेधातिथि, गोविन्द राज, कुल्लूक भट्ट आदि ने की इसी तरह याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका विज्ञानेश्वर, अपरार्क विश्वरूप आदि ने लिखी। असहाय ने नारद स्मृति और गौतम स्मृति पर टीका लिखा।

समग्र रूप में यदि देखें तो धर्मशास्त्र ग्रंथों ने भारतीय इतिहास लेखन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन धर्मशास्त्र ग्रंथों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इनमें ज्यादातर सामाजिक और धार्मिक पक्षों का विवेचन किया गया है अतः इतिहास के सामाजिक व धार्मिक पक्ष के लेखन में इन ग्रंथों से काफी मदद मिलती है। इन ग्रंथों में वर्णव्यवस्था, दायभाग, परिवार, सम्पत्ति के अर्जन, विक्रय और उत्तराधिकार के नियम सहित विवाह के विधान भी दिए गए हैं। इसके साथ ही चोरी, हमला, हत्या आदि के लिए दण्ड का भी विधान किया गया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय इतिहास लेखन में धर्मशास्त्र ग्रंथों का काफी महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रश्न : प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में धार्मिकेत्तर साहित्य के महत्व का विवेचन कीजिए।

UPPCS Mains Exam-2019 (I)

उत्तर :

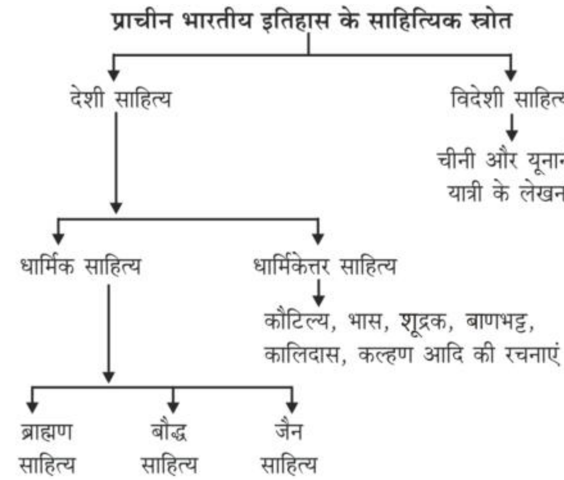

प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए **पुरातात्विक** और **साहित्यिक** दो महत्वपूर्ण स्रोत हैं। **पुरातात्विक** स्रोत में अभिलेख, सिक्के और भौतिक अवशेष महत्वपूर्ण है। **साहित्यिक** स्रोत में देशी और विदेशी साहित्य महत्वपूर्ण है। देशी साहित्य के दो भाग – धार्मिक साहित्य (ब्राह्मण, बौद्ध और जैन साहित्य) और धार्मिकेत्तर साहित्य हैं।

धार्मिकेत्तर साहित्य में स्वतंत्र लेखन को शामिल किया जाता है। **कौटिल्य** का अर्थशास्त्र, **भास** का स्वप्नवासदत्ता, **शूद्रक** का मृच्छकटिकम, **बाणभट्ट** का हर्षचरित, **कल्हण** का राजतरंगिणी और **कालिदास** की विभिन्न रचनाएं धार्मिकेत्तर साहित्य की कोटि में आती हैं। इसके अतिरिक्त बुद्धचरित, विक्रमांकदेवचरित, रामचरित, कथासरित्सागर, वृहत्कथा, गौड़वहो, नवसाहसांकचरित, महाभाष्य, मुद्राराक्षस, गार्गी संहिता आदि साहित्य भी धार्मिकेत्तर साहित्य की कोटि में ही रखे जाते हैं।

धार्मिकेत्तर साहित्य प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। प्रायः धार्मिक साहित्य का दृष्टिकोण धार्मिक होता है अतः इतिहास के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र (राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक) का विवरण इसमें नगण्य होता है। इतिहास निर्माण के लिए हम इस कमी को धार्मिकेत्तर साहित्य के माध्यम से पूरा करते हैं। प्रायः धार्मिक साहित्य में अतिरंजित और गलत जानकारी पायी जाती है, जबकि धार्मिकेत्तर साहित्य चूँकि स्वतंत्र लेखन होता है, घटनाएं लेखक के समक्ष घटित होती हैं अतः यहाँ अतिरंजना और गलत जानकारी की सम्भावना कम होती है। प्रायः सभी धार्मिक साहित्य की रचना उत्तर भारत में हुई है अतः इनसे उत्तर भारत की महत्वपूर्ण जानकारी तो मिल जाती है किन्तु अन्य क्षेत्र के सम्बन्ध में ये मौन रहते हैं जबकि धार्मिकेत्तर साहित्य में रामचरित से बंगाल का, विक्रमांकदेवचरित से दक्षिण भारत का तथा राजतरंगिणी से कश्मीर के इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। अतः धार्मिकेत्तर साहित्य का क्षेत्र व्यापक है।

प्रश्न : पूर्व मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन के लिए विदेशी विवरण के महत्व का विवेचन कीजिए।

UPPCS Mains Exam-2019 (I)

उत्तर : भारत में सामान्य तौर पर **750–1200 ई.** तक के काल खण्ड को पूर्व मध्यकाल कहा जाता है। इस कालखण्ड का इतिहास जानने का प्रमुख स्रोत साहित्य एवं अभिलेख है। किन्तु इस काल में कई विदेशी यात्रियों ने भारत की यात्रा कर यहाँ के बारे में जानकारी दी है जो इस काल के इतिहास लेखन में सहायक है।

पूर्व मध्यकाल में भारत के बारे में जानकारी देने वाले विदेशियों में अलबरूनी, अलमसूदी, सुलेमान, इब्न खुर्दाब, चाऊ-जू-कूआ व ह्वेनसांग प्रमुख हैं। चाऊ-जू-कूआ के विवरण से चोल देश तथा वहाँ की शासन व्यवस्था से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बातें ज्ञात हो जाती हैं। **ह्वेनसांग 640 ई.** में पल्लवों की राजधानी काँची आया था तथा उसका विवरण पल्लव इतिहास के जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत है। **अरब यात्री सुलेमान** गुर्जर–प्रतिहार शासक भोज के शासनकाल का वर्णन करता है। वह उसे अरबों का सबसे बड़ा शत्रु बताता है। **इब्न खुर्दादबेह** पूर्व मध्यकालीन भारत के 16 महान अरब भूगोल वेत्ताओं में से एक था। इसने क्षत्रियों के 2 वर्ग बताए हैं। **अल मसूदी** अरब यात्री था जो प्रतिहार राज्य में आया था इसने गुर्जर प्रतिहार को अल गुर्जर और राजा को बौरा कहा है।

पूर्व मध्यकालीन भारत का सबसे महत्वपूर्ण विदेशी यात्री अरब निवासी **अलबरूनी** था जो महमूद गजनवी के आक्रमण के समय भारत आया था और जिसने 'तहकीक-ए-हिन्द' पुस्तक लिखकर भारत के बारे में जानकारी दी है। अलबरूनी भारत के 4 परम्परागत जातियों के अतिरिक्त अछूतों की भी एक लम्बी सूची दी है। उसके अनुसार ब्राह्मणों को मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था।

पूर्व मध्यकालीन विदेशी यात्रियों के इन सूचनाओं का अपना एक अलग महत्व है। पूर्व मध्यकालीन साहित्य और अभिलेखों का गहराई से अध्ययन करने पर हमें यह पता चलता है कि वे अधिकतर प्रशस्ती के रूप में लिखे गए हैं। जिसमें शासकों की प्रशंसा अधिक है जिससे हमें पूर्ण रूप से सच्चाई का पता नहीं चलता। इस कमी को पूरा करने के लिए हम विदेशी विवरण को ले सकते हैं क्योंकि उनका लेखन स्वतंत्र था। दूसरे पूर्वमध्यकालीन साहित्य और अभिलेखों में राजनीतिक इतिहास तो भरे पड़े हैं किन्तु आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक इतिहास की बहुत कम जानकारी इनसे मिलती है। इस कमी को हम विदेशी स्रोत से पूरा कर सकते हैं जैसे अलबरूनी के भारत विवरण में उसके लेखन का ज्यादा बल सामाजिक–आर्थिक क्षेत्र पर ही है।

प्रश्न : प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के पुरातात्विक स्रोतों का विवरण दीजिए। UPPCS Mains Exam-2017 (I)

उत्तर : प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन में पुरातात्विक स्रोत अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इसके अंतर्गत अभिलेख, सिक्कें, भवन-निर्माण के अवशेष, विभिन्न प्रकार के मृदभांड, धातुओं से बनी सामग्री इत्यादि को शामिल किया जाता है।

प्राचीन भारत के इतिहास निर्माण के क्रम में प्राचीनतम पुरातात्विक स्रोतों में महाराष्ट्र के बोरी से प्राप्त प्रस्तर औजारों को माना जाता है जो लगभग चौदह लाख वर्ष पुराने हैं। इसी तरह नर्मदा क्षेत्र से प्राप्त मानव जीवाश्म, भीमबेटका की गुफाएँ आदि पुरापाषाणिक स्थल महत्वपूर्ण हैं। मध्य एवं नवपाषाणिक स्थलों की संख्या देश भर में फैली है, जिसमें बागोर, आदमगढ़, मेहरगढ़, कोल्डिहवा, बेलन घाटी क्षेत्र, चिरांद, बुर्जहोम पिक्लीहल, ब्रह्मगिरी आदि प्रमुख हैं।

इन स्थलों से प्रस्तर औजार, जीवन-निर्वाह की वस्तुएँ, कब्रें आदि मिली हैं, जो खाद्य संग्राहक मानव से निरंतर विकास की प्रक्रिया में सभ्य मानव के विकास के संबंध में महत्वपूर्ण स्रोत है।

पुरातात्विक स्रोतों में अभिलेखों को एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। भारत में प्राचीनतम अभिलेख हड़प्पा सभ्यता की मुहरों पर उत्कीर्ण हैं, लेकिन हड़प्पाई लिपि के अध्ययन पर इतने विवाद हैं कि इन अभिलेखों का स्रोत के रूप में प्रयोग नहीं हो पाया है। हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न स्थलों से प्राप्त भवन-निर्माण, मूर्ति-शिल्प, मनका निर्माण, धातु-उद्योग एवं जीवन-निर्वाह की अनेक वस्तुएँ प्राप्त होती हैं जो हड़प्पा सभ्यता के अध्ययन के महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत हैं।

वैदिक काल से संबंधित पुरातात्विक अभिलेख अभी तक भारत में प्राप्त नहीं हुए हैं, परन्तु मध्य एशिया के बोगजकोई नामक स्थल से प्राप्त चौदहवीं शताब्दी ईसा पूर्व का अभिलेख वैदिक देवताओं का उल्लेख करता है।

भारत का प्रथम अभिलेख जिसे पढ़ा गया है, वह लगभग 500 ईस्वी पूर्व का है। यह अभिलेख पिपरहवा से प्राप्त हुआ है, जो बुद्ध की मृत्यु एवं उनके अवशेषों पर स्तूप बनाए जाने की जानकारी देता है। मौर्य काल में अशोक के पूर्व के दो अभिलेख उत्तर प्रदेश के सोहगौरा और बंगाल के महास्थान से प्राप्त हुए हैं, जो दुर्भिक्ष की जानकारी देते हैं, कुछ विद्वान इन्हें चन्द्रगुप्त मौर्य से संबद्ध करते हैं।

इतिहास लेखन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत अशोक के अभिलेख माने जाते हैं। ब्राह्मी लिपि एवं प्राकृत भाषा में लिखे ये अभिलेख पढ़ लिए गए हैं जिनसे अशोक कालीन प्रशासन, विदेश नीति एवं धर्म के बारे में जानकारी मिलती है। ये अभिलेख अशोक कालीन मौर्य साम्राज्य के विस्तार एवं विदेशी तथा पड़ोसी राज्यों की जानकारी प्रदान करते हैं। एक महान शासक के रूप में सम्राट अशोक की जानकारी के लिए ये अभिलेख प्रमाणिक स्रोत हैं।

मौर्य काल के बाद स्थानीय सत्ता के अनेक केन्द्र उभरे और क्षेत्रीय शासकों द्वारा देश के विभिन्न भागों में अभिलेख जारी किए गए। इस काल में गैर शासकीय एवं धार्मिक प्रकृति के अभिलेख भी लिखे गए। पुष्यमित्र शुंग के राज्यपाल धनदेव का अयोध्या अभिलेख, सातवाहन शासकों का नानाघाट एवं नासिक अभिलेख, खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख इस काल की जानकारी के प्रमुख स्रोत हैं। खारवेल की ऐतिहासिकता की जानकारी के लिए हाथीगुम्फा अभिलेख ही एकमात्र स्रोत है।

गुप्त शासकों ने भी बड़े पैमाने पर अभिलेख जारी किए जो इतिहास लेखन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति उसके साम्राज्य विस्तार एवं युद्धों की जानकारी प्रदान करता है, इसी तरह स्कन्दगुप्त का भीतरी अभिलेख हूणों के आक्रमण का उल्लेख करता है। अभिलेखों से धार्मिक स्थिति की भी जानकारी मिलती है। हेलियोडोरस के गरुड़स्तम्भ एवं गुप्त अभिलेखों से वैष्णव धर्म के संबंध में पता चलता है।

गुप्तोत्तर काल के महत्वपूर्ण अभिलेखों में हर्ष का बांसखेड़ा एवं मधुवन ताम्रपत्र तथा चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय का एहोल अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इस समय तक दानपत्र एवं व्यक्तिगत अभिलेखों की संख्या में काफी वृद्धि हो चुकी थी, जो सामाजिक-आर्थिक इतिहास लेखन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

अभिलेखों के अतिरिक्त सिक्के प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। आरंभिक सिक्के आहत प्रकार के हैं। मौर्योत्तर काल में हिंद-यवनों, शकों, कुषाणों द्वारा जारी सिक्के इतिहास लेखन में महत्व रखते हैं। इनसे धार्मिक स्थिति के साथ-साथ आर्थिक जीवन के बारे में पता चलता है। सिक्कों की गुणवत्ता एवं बहुलता विकसित व्यापार एवं समृद्धि की ओर संकेत करते हैं।

गुप्तकाल के सिक्के भी बड़े पैमाने पर मिलते हैं जो गुप्त शासकों की समृद्धि का सूचक है। इन सिक्कों से धार्मिक जीवन तथा शासकों की व्यक्तिगत रुचि का भी पता चलता है। गुप्त शासकों ने वीणा प्रकार, व्याघ्र प्रकार, अश्वमेघ प्रकार के सिक्के जारी किए, जो शासकों की धार्मिक आस्था एवं व्यक्तिगत रुचि को स्पष्ट करते हैं।

अभिलेखों, सिक्कों के अलावा मृदभांड भी इतिहास लेखन एवं अध्ययन में महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत हैं। विशेष प्रकार के मृदभांडों की विशेष कालखंड से संबद्धता के आधार पर काल निर्धारण भी किया जाता है जैसे-गेरूवर्णीमृदभांड वैदिक काल से संबद्ध माना जाता है तो चित्रित धूसर मृदभांड बुद्ध काल एवं बाद के काल से तथा उत्तरी काले मृदभांड मौर्यकाल और उसके परवर्ती काल से सम्बद्ध हैं। भवनों के अवशेष एवं मूर्ति शिल्प, मंदिर आदि भी महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत हैं। हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो से प्राप्त अन्नागार एवं स्नानागार इसके प्रमुख उदाहरण हैं। पाटलिपुत्र में मौर्यकालीन प्रासाद प्राप्त हुआ है जो प्रमुख पुरातात्विक स्रोत हैं। दीदारगंज (पटना) की मूर्तियाँ मौर्य कालीन शिल्पकला की जानकारी देती हैं। इसी तरह मथुरा, सारनाथ, अमरावती, आदि स्थलों से मिली विभिन्न देवताओं की मूर्तियाँ धार्मिक जीवन के अतिरिक्त कला एवं शिल्प के विकास की जानकारी देती हैं।

मंदिर एवं गुहा विहार देश के विभिन्न भागों में मिले हैं जो स्थापत्य कला के विकास की जानकारी के स्रोत हैं। अजन्ता, एलोरा, बाघ की गुफाएँ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक धरोहर तथा इतिहास के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत भी हैं। चैत्य एवं विहार पाटलिपुत्र, कौशाम्बी एवं पाल-काल में बंगाल व बिहार में निर्मित कराए गए। महाविहार शिक्षा के केन्द्र थे जिसके अवशेष प्राप्त होते हैं। ये चैत्य और विहार धार्मिक स्थिति, स्थापत्य कला के उत्कर्ष तथा प्राचीन काल में शैक्षणिक गतिविधियों की जानकारी के महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्रोत हैं।

वस्तुतः पुरातात्विक स्रोत प्राचीन भारत के इतिहास निर्माण एवं अध्ययन के प्रमाणिक भौतिक स्रोत हैं, यद्यपि ये स्वयं अपना वर्णन तो नहीं करते पर इतिहासकारों द्वारा इन स्रोतों के वैज्ञानिक अध्ययन से प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन करना अधिक प्रमाणिक हुआ है।

प्रश्न : प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोत का विवेचन कीजिए। **UPPCS Mains Exam-2014 (I)**

उत्तर : प्राचीन भारतीय इतिहास के पुरातात्विक स्रोत- प्राचीन भारत के अध्ययन के लिए पुरातात्विक सामग्री का विशेष महत्व रहा है। इसके अन्तर्गत छः प्रकार के महत्वपूर्ण स्रोत प्राप्त होते हैं, वे हैं–(i) अभिलेख (ii) सिक्के (iii) स्मारक एवं भवन और (iv) मूर्तियां (v) चित्रकला (vi) अन्य अवशेष।

जहाँ तक पुरातात्विक स्रोत का प्रश्न हैं; इसके अंतर्गत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्रोत **अभिलेख** हैं। प्राचीन भारत के अधिकतर अभिलेख पत्थर या धातु की चादरों पर खुदे मिले हैं, अतः उनमें साहित्य की भाँति हेर-फेर करना संभव नहीं था। यद्यपि सभी अभिलेखों पर उनकी तिथि अंकित नहीं है, फिर भी अक्षरों की बनावट के आधार पर उनका काल मोटे रूप में निर्धारित हो जाता है। सबसे प्राचीन अभिलेख अशोक के हैं। गुजर्रा एवं मास्की के अभिलेखों से अशोक के नाम का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है। अशोक के अन्य अभिलेखों में उसे देवताओं का प्रिय, प्रियदर्शी राजा कहा गया है। इन अभिलेखों से अशोक के धर्म और राजस्व के आदर्श पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

रुद्रदामन का गिरनार 'शिलालेख, स्कंद गुप्त का भितरी स्तंभ लेख और जूनागढ़ शिलालेख, बंगाल के शासक विजयसेन का देवपाड़ा अभिलेख और चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का ऐहोल अभिलेख हैं।

सिक्के : पुरातात्विक सामग्री में सिक्कों का स्थान भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। भारत के प्राचीनतम सिक्कों पर अनेक प्रकार के चिह्न उत्कीर्ण हैं। उन पर किसी प्रकार के लेख नहीं है तथा ये सिक्के 'आहत सिक्के' कहलाते हैं। इन पर जो चिह्न बने हैं उनका ठीक-ठीक अर्थ ज्ञात नहीं होता है। इन सिक्कों को राजाओं के अतिरिक्त संभवतः व्यापारियों, व्यापारिक श्रेणियों और और नगर-निगमों ने चालू किया था। इनसे इतिहासकारों को विशेष सहायता नहीं मिली है किन्तु जब उत्तर-पश्चिमी भारत पर बैक्ट्रिया के हिन्द-यूनानी शासकों ने अधिकार कर लिया और लेख-युक्त अपने सिक्के चलाए तो भारतीय शासक भी लेख-युक्त वाले सिक्के चलाने लगे। इन सिक्कों पर सिक्का-लेख के अतिरिक्त बहुधा सिक्के को चालू करने वाले शासक की आकृति भी होती थी। ये सिक्के प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास लिखने में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

स्मारक और भवन : प्राचीन काल के महलों और मंदिरों की शैली से वास्तुकला के विकास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। उदाहरण के लिए उत्तर भारत के मंदिरों की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उनकी कला की शैली **'नागर शैली'** कहलाती है। जबकि दक्षिण भारत के मंदिरों की कला **'द्रविड़ शैली'** कहलाती है।

दक्षिणापथ के मंदिरों के निर्माण में नागर और द्रविड़ दोनों शैलियों का प्रभाव पड़ा, अतः यह **'वेसर शैली'** कहलाती है। इस प्रकार स्मारकों और भवनों से वास्तुकला के विकास के अध्ययन में बहुत सहायता मिलती है। मंदिरों, स्तूपों और विहारों से तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का पता चलता है या दक्षिण-पूर्वी एशिया और मध्य एशिया में जो मंदिरों और स्तूपों के अवशेष मिले हैं, उनसे भारतीय संस्कृति के प्रसार पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। जावा का स्मारक **'बोरो बुदूर'** इस बात का प्रमाण है कि नवीं शताब्दी में वहाँ महायान बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय हो गया था। इस प्रकार कला के माध्यम से हम भारत और विदेशों के सांस्कृतिक संबंधों का अध्ययन करते हैं।

मूर्तियां : इसी प्रकार प्राचीन काल में कुषाणों, गुप्त शासकों और गुप्तोत्तर काल में जो मूर्तियाँ बनाई गईं, उनसे जनसाधारण की धार्मिक आस्थाओं और मूर्ति कला के विकास पर बहुत प्रकाश पड़ा है। कुषाण काल की मूर्तिकला में विदेशी प्रभाव अधिक है। गुप्त काल की मूर्तिकला में अंतरात्मा तथा मुखाकृति में जो सामंजस्य है, वह अन्य किसी काल की कला में नहीं मिलता। गुप्तोत्तर काल की कला में सांकेतिकता अधिक है जिसे कला में निपुण व्यक्ति ही समझ सकते थे। उनमें वह स्वाभाविकता नहीं है जो गुप्त काल की मूर्तिकला में मिलती है। प्राचीन भारत की मूर्तिकला से जनसाधारण के जीवन पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ा है। भरहुत, बोधगया, साँची और अमरावती की मूर्तिकला में जनसाधारण के जीवन की अति सजीव झाँकी मिलती है।

चित्रकला : इसी प्रकार अंजता की गुफाओं के चित्रों में सुन्दर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। चित्रकला में 'माता और शिशु' या 'मरणासन्न राजकुमारी' जैसे चित्रों में ऐसे मनोभावों का चित्रण किया गया है जो शाश्वत हैं और जो किसी देश या काल विशेष की बपौती नहीं हैं। उनसे गुप्त काल की कलात्मक उन्नति का पूर्ण आभास मिलता है। निश्चय ही चित्रकला से हमें तत्कालीन जीवन की झलक देखने को मिलती है।

अवशेष : बस्तियों के स्थलों के उत्खनन से जो अवशेष मिले हैं उनसे प्रागैतिहासिक और आद्य इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ा। आदि मानव ने किस प्रकार उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का उपयोग करके अपने जीवन को सुखमय बनाने का प्रयत्न किया, इसकी जानकारी हमें उसकी बस्तियों से प्राप्त पत्थर और हड्डी के औजारों, मिट्टी के बर्तनों, मकानों के खंडहरों से ही होती है। पुरापाषाण युग से मिले पत्थर के खुरदरे औज़ारों से अनुमान लगाया गया है कि भारत में आदि मानव ईसा से 4 लाख से 2 लाख वर्ष पूर्व रहता था।

इसके अतिरिक्त एशिया माइनर में बोगजकोई नामक स्थान पर 1400 ई.पू. का संधिपत्र अभिलेख पर इन्द्र, वरुण, मित्र एवं नासत्य आदि वैदिक देवताओं के नाम मिले हैं। इसी प्रकार पर्सिपोलिस एव बेहिस्तून अभिलेख भी महत्वपूर्ण इतिहास सम्बन्धी जानकारी देते हैं।

निष्कर्षतः हम उक्त तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि ये साक्ष्य प्राचीन भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास लिखने में विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

प्रश्न : भारतीय इतिहास के अध्ययन में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की विवेचनात्मक समीक्षा कीजिए।

UPPCS Mains Exam-2011 (I)

उत्तर-कार्ल मार्क्स ने भारतीय इतिहास के प्रत्येक चरण पर अपना व्यापक दृष्टिकोण दिया है तथा ऐतिहासिक सभ्यता का विश्लेषणात्मक विवेचन किया है। मार्क्स के द्वारा सामाजिक तथा अर्थिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। आजादी के बाद भारतीय इतिहास लेखन में सबसे गम्भीर प्रयास मार्क्सवादी इतिहासकारों के द्वारा किया गया। इनके 'एप्रोच' का आधार सामाजिक आर्थिक सम्बन्ध थे। जिसने 'उत्पादन सम्बन्ध' को प्रभावित किया। कार्ल मार्क्स की महत्वपूर्ण सूक्ति ''दार्शनिकों ने अब तक समाज की व्याख्याएँ ही की हैं, परन्तु असली प्रश्न समाज को बदलने का है'' उनके अपने जीवन-दर्शन को भली-भाँति प्रतिबिंबित करती है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या जो मार्क्स ने की वह अपने परिवेश और उसके संघर्षों के संदर्भ में किया और आज उस पर न्यायसंगत टिप्पणी कर पाना इतना सुलभ नहीं है, परन्तु मोटे तौर पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि मार्क्स ने इतिहास को समाज के आंतरिक संगठन तथा बदलाव को अनावृत करने के उद्देश्य से देखा व अध्ययन किया। आरम्भिक भारतीय इतिहास लेखन में मार्क्सवादी विचारधारा को मुख्य रूप से स्थापित करने वाले इतिहासकारों में डी. डी. कोसाम्बी प्रमुख हैं, जिन्होंने 1956 में अपनी कृति 'एन इन्ट्रोडक्सन टू दि स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' के माध्यम से उन्हीं मार्क्सवादी विश्लेषण के तत्वों को स्वीकारा जो भारतीय परिदृश्य के अनुकूल थे। उन्होंने कहा कि मार्क्सवाद सोच या विचार का पर्याय नहीं बल्कि विश्लेषण की पद्धति है। अन्य मार्क्सवादी इतिहासकारों में आर. एस. शर्मा, रोमिला थापर, डी. एन. झा प्रमुख हैं, जिन्होंने मौर्यकाल, गुप्तकाल, लौह-युग एवं सामंतवाद आदि विषयों पर अपने मूल्यवान विचार प्रस्तुत किए हैं।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने इतिहास लेखन को एक नयी दिशा दी। राजवंशीय इतिहास का महत्व कम होता गया। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर अत्यधिक जोर दिया गया तथा उन्हें राजनीतिक गतिविधियों से जोड़ा गया। साहित्यिक स्रोतों को पुरातात्विक साक्ष्यों से पुष्टि करने की कोशिश की गई तथा इतिहास की समझ को विस्तृत करने के लिए नृतत्वशास्त्र का सहारा लिया गया। इसके साथ ही जलवायु और पर्यावरण संबंधी कारकों को भी महत्व दिया गया।

मार्क्सवादी विचार पद्धति को अपनाने के अनेक परिणाम निकले। भारतीय इतिहास के अध्ययन की बहुत सारी परम्परागत मान्यताएँ निरस्त हो गई। मगध साम्राज्यवाद के उद्भव के पीछे कतिपय शासकों के व्यक्तिगत पराक्रम की जगह सुस्पष्ट भौतिक कारकों का विवरण दिया गया। अशोक की 'धम्मनीति' को उसके उदार दृष्टिकोण का परिणाम न जानकर राज्य मशीनरी के सामाजिक दर्शन के रूप में मूल्यांकन किये जाने लगा। गुप्तकाल के संबंध में व्याप्त 'स्वर्ण युग' और 'हिन्दू-पुनर्जागरण जैसे तथ्यों को रोमांटिक (Utopia) और भ्रांतिपूर्ण बताया गया। डी. एन. झा ने अपनी पुस्तक 'एंशियेंट इंडिया : एन इन्ट्रोडक्ट्री आउटलाइन' में माना कि उच्च वर्गों के लिए इतिहास के सभी युग स्वर्ण युग ही रहे हैं, लेकिन आम जनता के लिए वे कभी स्वर्णयुग नहीं रहे।'' एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम यह रहा कि जेम्स मिल के काल विभाजन को ठुकराया गया और ऐसी मान्यता सामने आई कि मध्यकाल का उदय इस्लाम के आगमन से नहीं बल्कि गुप्तकाल के पतन के साथ हुआ। निहार रंजन रे ने मध्यकाल की अनेक विशिष्टताओं को रेखांकित किया है– सामंतवाद, सामाजिक क्षेत्र में उपजातियों का विकास, वाणिज्य व्यापार का पतन, मुद्रा अर्थव्यवस्था का पतन, ब्राह्मणवादी वर्चस्व में वृद्धि, वैश्यों की स्थिति में गिरावट, धर्म के क्षेत्र में अनेक देवी-देवताओं की परिकल्पना तंत्रवाद और भक्ति का उदय, भाषा, कला, वस्तुकला और साहित्य में क्षेत्रीयता का उदय इत्यादि।

क़ार्ल मार्क्स ने न्यूयार्क के डेली ट्रिब्यून 1853 में छपे लेखों की एक शृंखला में एशिया के समाज विशेषतः भारत की समस्याओं का बहुत ही उत्तम विश्लेषण किया। यह विश्लेषण इंग्लैण्ड के पूँजीवाद के उत्थान के लिए मण्डियों की खोज में साम्राज्यवाद के संदर्भ में किया गया। एक मार्मिक अन्तर्दृष्टि से उसने (i) पूर्व उपनिवेशीय भारतीय सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अवस्था का विश्लेषण, (ii) अंग्रेजी राज्य और यूरोपीय पूँजीवाद का भारत पर मध्य उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रभाव और (iii) अंग्रेजी राज्य का आने वाले भारत पर प्रभाव के विषय में भी अपने विचारों को लेखनीबद्ध किया।

अंग्रेजों की भारत में विनाशकारी भूमिका के विषय में उन्होंने उनके स्थानीय समाज का अर्थरहित विनाश का वर्णन किया और कहा कि अंग्रेज, निकृष्टतम भावनाओं से प्रेरित हुए हैं और इसे मूर्खतापूर्ण ढंग से लागू किया गया है। अंग्रेजों की भारत में भूमिका केवल स्थानीय धन का सम्यक लूटना तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का नाश करना है। भारत में उनके पुनर्जीवनप्रद कार्य, जो अभी आरम्भ ही हुआ था, तथा जिसके निश्चित लक्ष्यों में ही एशिया की गतिहीनता निहित थी।

एक दृढ़ केन्द्रीय सरकार के अधीन भारत की राजनीतिक एकता स्थापित होना सम्भवतः अंग्रेजी राज्य की सबसे प्रमुख देन थी। साम्राज्यवाद का निष्ठुर तर्कपूर्ण रूप तब प्रकट हुआ जब हिमालय से कन्याकुमारी तक तथा चटगाँव से खैबर तक समस्त प्रदेश अंग्रेजों के अधीन हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि कार्ल मार्क्स प्रारंभ से अंग्रेजों के काल तक इतिहास के विभिन्न चरणों पर अपने व्यापक विचार दिये हैं।

इन सभी विशेषताओं के बावजूद भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण में अनेक विसंगतियाँ भी थी। इस दृष्टिकोण ने मिल के काल विभाजन को तो अस्वीकार किया तथा मध्यकाल को परिभाषित करने की कोशिश की, लेकिन पूर्ण रूप से ये किसी प्रकार का तर्क संगत और वैज्ञानिक काल वर्गीकरण को नहीं ला सका। भारतीय इतिहास के सभी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर मार्क्सवाद लागू नहीं हो सकता था, क्योंकि भारत में जजमानी प्रथा विद्यमान थी। भारतीय परिपेक्ष्य में मार्क्सवाद का आरोपण कृत्रिम प्रतीत होता है क्योंकि मार्क्स ने जो कुछ भी कहा उसके लिए उसका समय, उस समय की परिस्थितियाँ इत्यादि जिम्मेदार थी। रूढ़िवादी मार्क्सवादी विचारधारा के विकास ने उपर्युक्त तथ्य को और भी मजबूती दी।

प्रश्न : भारत के प्रारम्भिक इतिहास को प्रभावित करने वाले भौगोलिक तत्वों की विवेचना कीजिए।

UPPCS Mains Exam-2009 (I)

उत्तर : भारत अति प्राचीन काल से ही विश्व का महान देश रहा है और प्राचीन सभ्यताओं का एक प्रधान केन्द्र भी जहां विश्व के अन्य सभी प्राचीन देश लुप्त प्राय हो चुके हैं, वहीं भारत अपनी सांस्कृतिक विरासत संजोए चल रहा है। भारत का मध्य एशिया से लेकर दक्षिण पूर्व एशिया तक से घनिष्ठ संबंध रहा है। युग-युगान्तर से भारतीय सभ्यता स्वतंत्र रूप से विकसित होती आ रही है। कारण, भारतीय इतिहास पर उसके भूगोल का प्रभाव स्पष्ट है।

उत्तर में हिमालय और दक्षिण में हिन्द महासागर भारत के प्राकृतिक सीमा का निर्माण करते हैं। पूर्व, दक्षिण और पश्चिम में भारत समुद्रों से घिरा हुआ है। उत्तरी सीमा पर पर्वतों की भयंकर दुरूहता और दक्षिण के समुद्रों के कारण भारत शेष विश्व से प्रायः पृथक् रहा। पूरब में कोई नागा और लुसाई की पहाड़ियां और उसके घने जंगल इसकी सीमा के प्राकृतिक प्रहरी थे। भारत के आकार की विशालता का इसके इतिहास पर काफी प्रभाव पड़ा। इससे प्राकृतिक और सामाजिक परिस्थितियों की विविधता उत्पन्न हुई, जिसके कारण भारत विश्व का एक लघु रूप ही बन गया। भारत में वह सब कुछ मिलता है, जो मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। प्रकृति ने भारत को आर्थिक आत्मनिर्भरता के साधनों से सम्पन्न कर दिया।

पूर्वी-पश्चिमी समुद्र और हिमालय के मध्य उत्तर भारत का विस्तृत मैदान है, जिसकी सिंचाई स्वतः सदावाहिनी नदियों से होती रहती है, उत्तर भारत की जमीन सदा उपजाऊ बनी रहती है। उत्तर भारत में वर्षा का भी अभाव नहीं है। गंगा-यमुना का मैदान संसार के सबसे उपजाऊ प्रदेशों में एक माना जाता है। दक्षिण में विन्ध्य पर्वत के पूर्वी अंश में नर्मदा के स्रोतों के पास से निकली एक पर्वत श्रृंखला नर्मदा के बाएं किनारे से चली गई है। ताप्ती और महानदी के दक्षिण समुद्र की ओर बढ़ता हुआ तिकोना पठार 'दक्कन' या 'दक्षिण' कहलाता है। तिकोने पठार के पश्चिमी किनारे को 'पश्चिमी घाट' और पूर्वी किनारे को 'महेन्द्र पर्वत' या पूर्वी घाट कहते हैं। पश्चिमी घाट के उत्तर वाले हिस्से को कोंकण, मध्य हिस्से को कन्नड़ और दक्षिण हिस्से को केरल या मालाबार कहा जाता है। पूर्वी घाट के दक्षिणी अंश को कोरोमण्डल (चोल मण्डल) और उत्तरी अंश को कलिंग कहते हैं। दक्षिण का पठार कृष्णा नदी द्वारा दो भागों में बँटा हुआ है। उसके उत्तर के भाग का पश्चिमी अंश महाराष्ट्र और मुहाना सहित पूर्वी अंश आन्ध्र कहलाता है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में फल व फूलों की प्रधानता है। दक्षिणी नदियों की घाटियां भी काफी उपजाऊ हैं।

भारत के प्रमुख कृषि क्षेत्र प्रादेशिक राजनीतिक सत्ता के भी प्रमुख केन्द्र रहे हैं, जैसे मगध। दक्षिण में कावेरी डेल्टा चोल शक्ति का केन्द्र रहा। कुछ क्षेत्रों में व्यापार मार्ग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। गंगाघाटी में जो प्रसिद्ध शहर थे, वे घाटी से होकर गुजरने वाले व्यापार के द्वारा सहज ही एक दूसरे से जुड़ गये। कौशाम्बी, मथुरा आदि प्रसिद्ध स्थान वस्तुतः उन महत्वपूर्ण स्थानों पर विकसित हुए, जहाँ कई व्यापार मार्ग एक-दूसरे से मिलते हैं। कौशाम्बी से जो मार्ग मालवा होकर दक्कन की ओर जाता है, वह प्रमुख है और आज भी इलाहाबाद से गुजरने वाले राष्ट्रीय राजमार्ग 7 के रूप में जाना जाता है। मथुरा से निकल कर एक मार्ग राजस्थान और पश्चिम भारत की ओर जाता था। उत्तर-पश्चिम भारत में तक्षशिला केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं था कि वह गंगाघाटी के उत्तर पश्चिम और उसके पार जाने वाले विशाल राजमार्ग पर स्थित था, बल्कि इसका महत्व इसलिए भी था कि तक्षशिला क्षेत्र से एक मार्ग कश्मीर की ओर वहाँ से मध्य एशिया की ओर जाता था। अतः यह कहा जाता है कि पूरे भारत के ऐतिहासिक स्थल व्यापार मार्गों के सहारे विकसित हुए। दक्षिणी समुद्र तट समुद्री व्यापार की दृष्टि से बड़ा ही उपयुक्त था- इसी के चलते केरल, तमिलनाडु और आन्ध्र के तटीय क्षेत्रों में अनेक बंदरगाहों का विकास हुआ। दक्षिण का समुद्री सम्पर्क वस्तुतः दक्षिण भारत के इतिहास के पूरे प्रवाह में निरंतर कायम रहा। ई.पू. 3000 से 2000 के बीच में ही फारस की खाड़ी के साथ गुजरात का घनिष्ठ संबंध था और पश्चिम एशिया, अफ्रीका तथा भूमध्य सागर के साथ गुजरात तट के सम्बन्ध को भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण कारक माना गया है। वस्तुतः भारत तीन ओर से समुद्र से घिरा हुआ है। अति प्राचीन काल से ही यहाँ के निवासी समुद्र के रास्ते से पूर्ण परिचित थे। ये लोग अफ्रीका, अरब, ईरान, हिंद चीन, चीन आदि देशों से व्यापार किया करते थे। रोम के साथ तो बहुत दिनों तक व्यापार चलता रहा।

यद्यपि प्राकृतिक बनावट ने भारत को संसार के और देशों से पृथक् रखा है। चीन के बाद भारत ही एशिया महादेश का सबसे बड़ा देश है। प्राचीनकाल में पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त से भारत पर आक्रमण होता था क्योंकि उधर ही बेलन और खैबर की घाटियां थी, जो सम्प्रति पाकिस्तान में हैं। आर्यों के समय से मध्य युग तक भारत पर सभी आक्रमण इसी रास्ते से हुए थे। 1498 में वास्कोडिगामा के नेतृत्व में पुर्तगाली व्यापारी सबसे पहले समुद्री रास्ते से भारत में आये तदनन्तर डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज आये। यद्यपि कभी भी बाहरी सभ्यता से भारत अछूता नहीं रहा, फिर भी इसकी भौगोलिक पृथकता के कारण यहाँ की सभ्यता पर अधिक विदेशी प्रभाव नहीं पड़ा। भूगोल का प्रभाव इस देश पर विशेष रूप से देखा जाता है। सांस्कृतिक रूप से भारत अनेकता में एकता स्थापित किए हुए है। भारत के चार कोनों पर स्थित चारों धाम भारतीय भौगोलिक एकता के आलोक स्तम्भ हैं।

भारतीय जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं है जिस पर हिमालय का प्रभाव नहीं। यदि उत्तर में हिमालय हमारी संस्कृति का प्रतीक है तो दक्षिण में कन्याकुमारी भी हमारे आदि पुरुष श्रीराम के धार्मिक धरोहर रामेश्वरम् को आज भी संरक्षित किये हुए है जिसे आर्य सभ्यता का प्रतीक माना जाता है।

उपरोक्त तथ्यों के दोहन से स्पष्ट होता हैं कि भारत का प्राचीन समुद्री व्यापारिक विकास तथा अंतरद्वीपीय यातायात के कारण जहाँ देश की आर्थिक आवश्यकता पूरी हुई, वहीं व्यापारिक एवं भौगोलिक संरचनाओं से राजनैतिक एवं सांस्कृतिक एकता का सूत्रपात हुआ। अतः भारत के प्राचीन राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक इतिहास पर भूगोल का अत्यधिक प्रभाव स्वतः सिद्ध है।

प्रश्न : भारत के प्रारम्भिक इतिहास के अध्ययन का मार्क्सवादी दृष्टिकोण का विवेचन कीजिए।

UPPCS Mains Exam-2008, 2020

उत्तर : आजादी के बाद भारतीय इतिहास लेखन में सबसे गम्भीर प्रयास मार्क्सवादी इतिहासकारों के द्वारा किया गया। इनके 'एप्रोच' का आधार सामाजिक आर्थिक सम्बन्ध थे। जिसने 'उत्पादन सम्बन्ध' को प्रभावित किया। कार्ल मार्क्स की महत्वपूर्ण सूक्ति ''दार्शनिकों ने अब तक समाज की व्याख्याएँ ही की है, परन्तु असली प्रश्न समाज को बदलने का है'' उनके अपने जीवन-दर्शन को भली-भाँति प्रतिबिंबित करती है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या जो मार्क्स ने की वह अपने परिवेश और उसके संघर्षों के संदर्भ में किया और आज उस पर न्यासंगत टिप्पणी कर पाना इतना सुलभ नहीं है, परन्तु मोटे तौर पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि मार्क्स ने इतिहास को समाज के आंतरिक संगठन तथा बदलाव को अनावृत करने के उद्देश्य से देखा व अध्ययन किया। आरम्भिक भारतीय इतिहास लेखन में मार्क्सवादी विचारधारा को मुख्य रूप से स्थापित करने वाले इतिहासकारों में डी. डी. कोसाम्बी प्रमुख हैं, जिन्होंने 1956 में अपनी कृति 'एन इन्ट्रोडक्सन टू दि स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' के माध्यम से उन्हीं मार्क्सवादी विश्लेषण के तत्वों को स्वीकारा जो भारतीय परिदृश्य के अनुकूल थे। उन्होंने कहा कि मार्क्सवाद सोच या विचार में पर्याय नहीं बल्कि विश्लेषण की पद्धति है। अन्य मार्क्सवादी इतिहासकारों में आर. एस. शर्मा, रोमिला थापर, डी. एन. झा प्रमुख हैं, जिन्होंने मौर्यकाल, गुप्तकाल, लौह-युग एवं सामंतवाद आदि विषयों पर अपने मूल्यवान विचार प्रस्तुत किए हैं।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने इतिहास लेखन को एक नयी दिशा दी। राजवंशीय इतिहास का महत्व कम होता गया। सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं पर अत्यधिक जोर दिया गया तथा उन्हें राजनीतिक गतिविधियों से जोड़ा गया। साहित्यिक स्रोतों को पुरातात्विक साक्ष्यों से पुष्टि करने की कोशिश की गई तथा इतिहास की समझ को विस्तृत करने के लिए नृतत्वशास्त्र का सहारा लिया गया। इसके साथ ही जलवायु और पर्यावरण संबंधी कारकों को भी महत्व दिया गया।

मार्क्सवादी विचार पद्धति को अपनाने के अनेक परिणाम निकले। भारतीय इतिहास के अध्ययन की बहुत सारी परम्परागत मान्यताएँ निरस्त हो गई। मगध साम्राज्यवाद के उद्भव के पीछे कतिपय शासकों के व्यक्तिगत पराक्रम की जगह सुस्पष्ट भौतिक कारकों का विवरण दिया गया। अशोक की 'धम्मनीति' को उसके उदार दृष्टिकोण का परिणाम न जानकर राज्य मशीनरी के सामाजिक दर्शन के रूप में मूल्यांकन किया जाने लगा। गुप्तकाल के संबंध में व्याप्त 'स्वर्ण युग' और 'हिन्दू-पुनर्जागरण जैसे तथ्यों को रोमांटिक (Utopia) और भ्रांतिपूर्ण बताया गया। डी. एन. झा ने अपनी पुस्तक 'एंशियेंट इंडिया : एन इन्ट्रोडक्ट्री आउटलाइन' में माना कि उच्च वर्गों के लिए इतिहास के सभी युग स्वर्ण युग ही रहे हैं, लेकिन आम जनता के लिए वे कभी स्वर्णयुग नहीं रहे।'' एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम यह रहा कि जेम्स मिल के काल विभाजन को ठुकराया गया और ऐसी मान्यता सामने आई कि मध्यकाल का उदय इस्लाम के आगमन से नहीं बल्कि गुप्तकाल के पतन के साथ हुआ। निहार रंजन रे ने मध्यकाल की अनेक विशिष्टताओं को रेखांकित किया है– सामंतवाद, सामाजिक क्षेत्र में उपजातियों का विकास, वाणिज्य व्यापार का पतन, मुद्रा अर्थव्यवस्था का पतन, ब्राह्मणवादी वर्चस्व में वृद्धि, वैश्यों की स्थिति में गिरावट, धर्म के क्षेत्र में अनेक देवी-देवताओं की परिकल्पना तंत्रवाद और भक्ति का उदय, भाषा, कला, वस्तुकला और साहित्य में क्षेत्रीयता का उदय इत्यादि।

इन सभी विशेषताओं के बावजूद भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण में अनेक विसंगतियाँ भी थीं। इस दृष्टिकोण ने मिल के काल विभाजन को तो अस्वीकार किया तथा मध्यकाल को परिभाषित करने की कोशिश की, लेकिन पूर्ण रूप से ये किसी प्रकार का तर्कसंगत और वैज्ञानिक काल वर्गीकरण को नहीं ला सका। भारतीय इतिहास के सभी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर मार्क्सवाद लागू नहीं हो सकता। भारतीय परिप्रेक्ष्य में मार्क्सवाद का आरोपण कृत्रिम प्रतीत होता है क्योंकि मार्क्स ने जो कुछ भी कहा उसके लिए उसका समय, उस समय की परिस्थितियाँ इत्यादि जिम्मेदार थीं। रूढ़िवादी मार्क्सवादी विचारधारा के विकास ने उपर्युक्त तथ्य को और भी मजबूती दी।

प्रश्न : प्राचीन भारत में इतिहास-पुराण परम्परा। **UPPCS Mains Exam-2007 (I)**

उत्तर : भारतीय संस्कृति के सम्यक् अवलोकन के लिए पुराणों का अध्ययन आवश्यक है। पुराण और इतिहास का अभिन्न भाव सम्बन्ध सर्वविदित है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड पुराण है। पुराण ही वह आधारशिला है, जिस पर आधुनिक भारतीय समाज अपने नियंत्रण को प्रतिष्ठित करता है। यद्यपि **विंटरनिट्ज** ने लिखा है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के काव्य में इतिहास, पुराण ग्रंथ विद्यमान थे, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है तथा ब्राह्मणों में जो इतिहास पुराण बहुधा उल्लिखित हैं, उनसे वास्तविक पुस्तकों का अभिप्राय नहीं है और वर्तमान पुराणों अथवा इतिहासों का तो अभिप्राय लिया ही नहीं जा सकता। परन्तु प्रश्न यह है कि जब ब्राह्मण ग्रंथ स्वयं पुस्तक रूप में हैं तो उनसे जुड़े हुए स्मृति, इतिहास, पुराण क्यों पुस्तक रूप में नहीं थे? इस तथ्य की विंटरनिट्ज महोदय ने उपेक्षा की है। यह संभावना की जा सकती है, कि पुराण इतिहास की भारतीय इतिहास विद्या में एक दीर्घकालीन परम्परा रही है।

इतिहास-पुराण की परम्परा भारतीय इतिहास शास्त्र की एक सुदृढ़ एवं सर्वमान्य परम्परा रही है, जो ऋग्वैदिक काल से अद्यतन भारतीय लोक जीवन में प्रवाहित है। इस परम्परा में समकालीन संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में प्रचलित सभी लोक गाथाओं, कथाओं, आख्यानों, व्याख्यानों आदि का सम्मिश्रण होते हुए इतिहास का स्वरूप निर्मित हुआ।

पुराणों के ऐतिहासिक स्वरूप के निर्माण में पुराण के अन्तर्गत विवृत पाँच विशिष्ट विषय थे—

'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशों मन्वन्तराणि च।

वंशानुचरितं चेति पुराणां पंचलक्षणम्॥'

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँच प्रधान विषय पुराणों में वर्णित हैं। प्रायः अधिकांश पुराणों तथा अमरकोष में पुराणों के इन विषयों का उल्लेख किया गया है—

1. **सर्ग**—जगत् को तथा उसकी नाना पदार्थों की उत्पत्ति अथवा सृष्टि को सर्ग कहा जाता है।
2. **प्रतिसर्ग**—सर्ग में विपरीत वस्तु अर्थात् प्रलय को प्रतिसर्ग कहा गया है।
3. **वंश**—ब्रह्मा से उत्पन्न राजाओं की भूत, वर्तमान और भावी कुल परम्परा को 'वंश' नाम से पुकारते हैं। कुछ पुराणों में राजवंश के अतिरिक्त ऋषियों के वंश का भी उल्लेख किया गया है। अतः पुराणों में ऋषि वंश व राजवंश दोनों का अर्थ समीचीन है।
4. **मन्वन्तर**—पुराणों के अनुसार मन्वन्तर शब्द सृष्टि के विभिन्न कालमान का द्योतक है। पौराणिक कालगणना का महत्व मन्वन्तरों से व्यक्त किया गया है। भागवत पुराण में 14 मन्वन्तरों का उल्लेख मिलता है।
5. **वंशानुचरित**—वंशानुचरित में पूर्वोक्त वंशों में उत्पन्न वंश परम्पराओं का तथा मूल पुरुष राजाओं का विशिष्ट विवरण वर्णित होता है।

पुराणों का उल्लेख ऋग्वैदिक संहिताओं से प्रारम्भ होकर आधुनिक युग तक प्रवाहमान है, किन्तु एक ऐतिहासिक प्रक्रिया ऋग्वैदिक काल से ही दिखायी देती है, जो पुराण संहिता के निर्माण में अनेकशः उपकरणों, उपांगों को समेट कर चलती रही। यह प्रक्रिया मौखिक एवं लिखित रूप में विकसित हुई। इस ऐतिहासिक विकास प्रक्रिया के संदर्भ में विष्णुपुराण की ये पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

'आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।

पुराणसंहिता चक्र पुराणार्थ विशारदाः॥'

अर्थात् पुराण के निर्माण में आख्यान, उपाख्यान, गाथा तथा कल्पशुद्धि से आधार ग्रहण कर पुराणसंहिता का विकास हुआ।

पुराणों के पाँच विषयों (सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर एवं वंशानुचरित) में वंशानुचरित का विशेष महत्व है। केवल 5 पुराणों—(मत्स्य, वायु, विष्णु, ब्रह्माण्ड तथा भागवत) में ही राजाओं की वंशावली पाई जाती है। पुराणों की भविष्य शैली में कलियुग के राजाओं की तालिकाएँ दी गई हैं। इनके साथ शिशुनाग, नन्द, मौर्य, शुंग, कण्व, आन्ध्र तथा गुप्त वंशों की वंशावलियाँ भी मिलती हैं। मौर्यवंश के लिए विष्णु पुराण तथा आन्ध्र (सातवाहन) वंश के लिए मत्स्य पुराण महत्व के हैं। इसी प्रकार वायु पुराण में गुप्त वंश की साम्राज्य सीमा का वर्णन तथा गुप्तों की शासन पद्धति का भी कुछ विवरण प्राप्त होता है।

इस प्रकार पुराण प्राचीनकाल से लेकर गुप्त वंश के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय कराते हैं। छठी शताब्दी ई० पू० के पहले के प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनःनिर्माण के लिए तो पुराण ही एकमात्र स्रोत हैं।

प्रश्न : 'पुरातात्विक स्रोत प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन का दर्पण है।' समीक्षा कीजिए।

उत्तर : प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए पुरातात्विक स्रोतों की महत्वपूर्ण भूमिका होती हैं। ये स्रोत हमें उस कालखंड के सामाजिक जीवन, संस्कृति और घटनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। पुरातात्विक स्रोत अपनी महत्ता के कारण ही इतिहास लेखन का दर्पण माना जाता है।

पुरातात्विक स्रोतों का महत्व–इसका महत्व हम निम्नलिखित बिंदुओं से समझ सकते हैं–

(i) लिखित साहित्यिक स्रोतों में संभवतः अतिश्योक्ति या पक्षपात हो सकता है, लेकिन पुरातात्विक स्रोत **अधिक विश्वसनीय** होते हैं, उदाहरण के तौर पर हड़प्पा सभ्यता की खोज उत्खनन से ही हुई, क्योंकि इसका कोई साहित्यिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं था। उत्खनन से प्राप्त नगर नियोजन, जल निकासी प्रणाली तथा मोहरों ने उस सभ्यता के उन्नत स्तर को प्रमाणित किया।

(ii) पुरातात्विक अवशेष जैसे कि मंदिर, स्तूप और मूर्तियों एवं शिलालेख, मुद्रा, अभिलेख आदि से तात्कालिक धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं की जानकारी प्राप्त होती है, उदाहरण के तौर पर अशोक के शिलालेख से हमें बौद्ध धर्म के प्रचार और उसके शासनकाल की नीतियों की जानकारी प्राप्त होती है। अजंता और एलोरा की गुफाओं में बनी पेंटिंग और मूर्तियों से उस समय की कला और संस्कृति का पता चलता है।

(iii) उत्खनन से प्राप्त मोहरों, सिक्कों और कलाकृतियों से उस समय के आर्थिक जीवन की जानकारी मिलती है। उदाहरण के तौर पर पंचमार्क सिक्के और बाद में सोने के सिक्कों ने उस समय के व्यापार और आर्थिक समृद्धि को दर्शाया, वहीं प्राप्त हुए बर्तनों और औजारों से लोगों के दैनिक जीवन और तकनीकी विकास का पता चलता है।

(iv) कार्बन डेटिंग जैसी वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करके पुरातात्विक सामग्री की आयु का पता लगाया जा सकता है, जिसके माध्यम से हम सभ्यताओं और घटनाओं का कालक्रम निर्धारित कर सकते हैं।

किन्तु यहाँ ध्यातव्य है कि पुरातात्विक स्रो एक मात्र सही स्रोत है यह कहना भी अश्योक्तिपूर्ण है। एक तो इनका काल निर्धारण सबसे बड़ी समस्या बनी हुई है दूसरे प्रसस्ति के रूप में प्राप् पुरातात्विक स्रोत सही जानकारी हमे प्रदान हीं करते हैं। तीसरे प्राचनी भारत के कुछ ऐसे काल है जहाँ पुरातात्विक स्रोत मौन है जैसे वैदिक काल की जानकारी पुरातात्विक स्रोत से नहीं होता है।

निष्कर्षतः पुरातात्विक स्रोत प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में एक दर्पण की तरह कार्य करते हैं, जो हमें साहित्यिक स्रोतों के साथ मिलकर एक पूर्ण और विश्वसनीय तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। ये स्रोत हमें इतिहास को समझने और उसकी व्याख्या करने में एक ठोस आधार प्रदान करते हैं।

प्रश्न : प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में साहित्यिक स्रोत का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर : इतिहासकारों को अतीत के पुनर्निर्माण और सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों या विकास को समझने में मदद करने वाले स्रोतों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, पुरातात्विक और साहित्यिक। साहित्यिक स्रोत वे होते हैं, जो लिखित रूप में हमें प्राप्त होते हैं, ये संसाधन मानव समाज में हुई प्रगति को दर्शाते हैं और इतिहास में घटित घटनाओं का व्यापक विवरण प्रस्तुत करते हैं। साहित्यिक स्रोत मुख्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है–

(i) धार्मिक ग्रंथ **(ii) लौकिक ग्रंथ** **(iii) विदेशी यात्रियों के विवरण**

साहित्यिक स्रोतों में सबसे प्रमुख स्थान धार्मिक साहित्य का है। वेद उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत तथा बौद्ध जैन ग्रंथों से हमें इतिहास के लिए महत्वपूर्ण सामग्री मिलती है। परंतु इसमें कुछ सीमाएँ भी स्पष्ट दिखाई देती हैं, जैसे कि घटनाओं का निश्चित कालक्रम का न होना तथा धार्मिक दृष्टिकोण से इन ग्रंथों का निष्पक्ष न होना।

लौकिक साहित्य के अंतर्गत ऐतिहासिक, अर्द्धऐतिहासिक ग्रंथ एवं जीवनियों को शामिल किया जाता है, जैसे अर्थशास्त्र, राजतरंगिणी, मुद्राराक्षस, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, बुद्धचरित्र, हर्षचरित्र इत्यादि।

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए धर्मनिरपेक्ष साहित्यिक स्रोतों में विदेशी यात्रियों के यात्रा वृत्तान्तों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान हैं, उदाहरण के तौर पर मेगस्थनीज़ द्वारा लिखित 'इण्डिका', अलबरूनी रचित 'तहकीक-ए-हिन्द' आदि ने तत्कालीन भारत के सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डाला है।

साहित्यिक स्रोतों से यद्यपि अनेक महत्वपूर्ण विवरणों और घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है, तथापि सिर्फ इन ग्रंथों के आधार पर ही भारतीय इतिहास की रचना नहीं की जा सकती है। साहित्यिक ग्रंथों में अनेक त्रुटियाँ हैं साथ ही इनमें तिथिक्रम का अभाव है, जिससे काल निर्धारण करने की समस्या प्रकट होती है। अधिकांश ग्रंथ धार्मिक भावना या पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर लिखे गए हैं साथ ही इन्हें संपूर्ण भारत की जानकारी के लिए उपयोग में नहीं लिया जा सकता है, ये सामान्यतः क्षेत्र विशेष की जानकारी प्रदान करते हैं।

निष्कर्षतः साहित्यिक साधनों से प्राप्त जानकारी निष्पक्ष नहीं कही जा सकती। इसके लिए इतिहासकारों द्वारा पुरातात्विक साक्ष्यों का भी सहारा लिया जाता है, जो अपेक्षाकृत इतिहास लेखन में ज्यादा उपयोगी होती है।

प्रश्न : 'प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में विदेशी यात्रियों का विवरण, साहित्यिक स्रोत का पूरक है'। इस पर टिप्पणी कीजिए।

उत्तर : प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन में विदेशी यात्रियों के विवरण वास्तव में साहित्यिक स्रोतों के महत्वपूर्ण पूरक सिद्ध होते हैं। ये विवरण न केवल भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति और अर्थव्यवस्था को एक बाहरी दृष्टिकोण से उजागर करते हैं, बल्कि भारतीय स्रोतों की पुष्टि और आलोचना भी करते हैं। इसे हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं–

(i) भारतीय धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ प्रायः घटनाओं की सटीक तिथि निर्धारित नहीं करते हैं और साथ ही धर्म नैतिकता पर अधिक केंद्रित रहते हैं। वहीं विदेशी यात्रियों के विवरण इस कमी को पूर्ण करते हैं, उदाहरण के तौर पर यूनानी राजदूत मेगस्थनीज़ ने अपनी पुस्तक इंडिका में मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य को 'सैंड्रोकटस' नाम से उल्लेखित किया। इस पहचान ने मौर्य साम्राज्य को चौथी शताब्दी ई.पू. में स्थापित करने में निर्णायक भूमिका निभाई। इसी प्रकार चीनी यात्रियों के यात्रा वृत्तांतों ने गुप्त और हर्ष काल के कालक्रम को स्पष्ट करने में सहायता की।

(ii) भारतीय ग्रंथ अक्सर शास्त्र आधारित समाज का चित्रण करते हैं, वहीं विदेशी यात्रियों ने प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित विवरण प्रस्तुत किए जो अत्यधिक यथार्थपूर्ण है। उदाहरण के तौर पर फाह्यान ने गुप्त साम्राज्य की समृद्धि, कर व्यवस्था, न्याय प्रणाली की उदारता और सामान्य जनजीवन की शांति का उल्लेख किया, ऐसी सूचनाएँ भारतीय संस्कृत साहित्य में कम मिलती हैं।

(iii) दरबारी कवियों की प्रशस्तियाँ प्रायः अपने संरक्षक राजाओं की अतिशय प्रशंसा करती थी, वहीं विदेशी यात्री अपेक्षाकृत, तटस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के तौर पर ह्वेनसांग ने हर्ष की उपलब्धियों की सराहना की, पर साथ ही कुछ क्षेत्रों जैसे कानून व्यवस्था की कमियों का भी उल्लेख किया। नालंदा की शिक्षा, पाठ्यक्रम और छात्र जीवन का उसका विस्तृत विवरण किसी अन्य भारतीय स्रोत में देखने को नहीं मिलता है।

(iv) विदेशी यात्रियों ने भारतीय समाज की उन प्रथाओं पर भी प्रकाश डाला है, जिन्हें भारतीय लेखक सामान्य या संवेदनशील मानकर टाल देते थे, उदाहरण के तौर पर अलबरूनी ने अपनी कृति किताब-उल-हिन्द में जाति व्यवस्था की कठोरता, भारतीयों के अपने ज्ञान पर गर्व और बाहरी दुनिया से उनकी दूरी की आलोचनात्मक चर्चा की।

(v) हालाँकि विदेशी यात्रियों की अपनी सीमाएँ थीं जैसे कि भाषा की बाधाएँ, स्थानीय रीति-रिवाजों की अपूर्ण समझ, व्यक्तिगत पूर्वाग्रह (उदाहरण चीनी यात्रियों का बौद्ध धर्म पर विशेष ध्यान) और कभी-कभी सुनी-सुनाई बातों पर आधारित विवरण, फिर भी उनके यात्रा वृत्तांत भारत के इतिहास के लिए अनिवार्य है।

निष्कर्षतः विदेशी यात्रियों के विवरण भारतीय साहित्यिक स्रोतों की कड़ियों को जोड़ते हैं साथ ही उनके दावों की पुष्टि भी करते हैं और वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। भारतीय ग्रंथों के आंतरिक दृष्टिकोण और विदेशी यात्रियों के बाहरी दृष्टिकोण को मिलाकर ही भारत का संतुलित, व्यापक और विश्वसनीय इतिहास निर्मित किया जा सकता है।

प्रश्न : प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन में विभिन्न स्रोतों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर : प्राचीन भारतीय इतिहास को समझने और पुनर्निर्मित करने के लिए इतिहासकार मुख्यतः तीन प्रकार के स्रोतों का सहारा लेते हैं, पुरातात्विक, साहित्यिक स्रोत और विदेशी यात्रियों के विवरण। प्रत्येक स्रोत की अपनी विशिष्टताएँ, उपयोगिता और सीमाएँ हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से समझ सकते हैं।

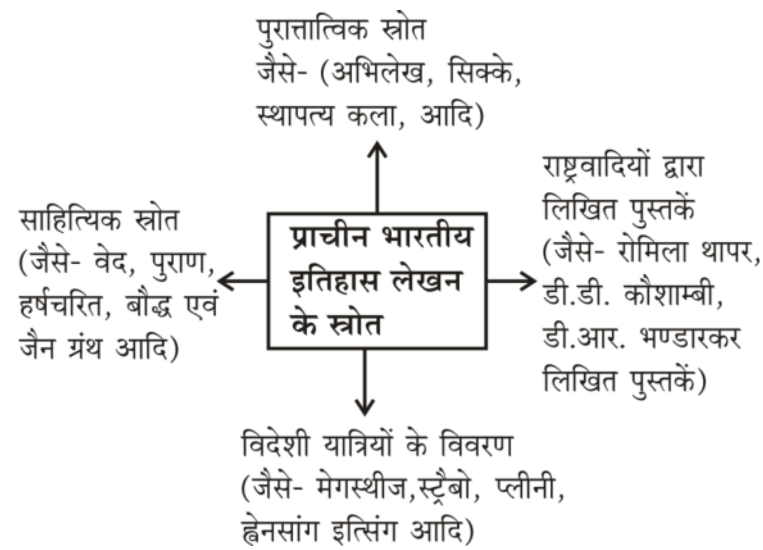

- पुरातात्विक स्रोत जैसे अभिलेख, सिक्के, मुहरें, मूर्तियाँ, स्मारक और उत्खनन से प्राप्त अन्य अवशेष प्राचीन भारत की ठोस और वस्तुनिष्ठ जानकारी प्रदान करते हैं। इनका महत्व इस कारण अधिक होता है, क्योंकि ये प्रत्यक्ष भौतिक साक्ष्य होते हैं, जिन्हें साहित्यिक स्रोतों जैसे अतिशयोक्ति की संभावना नहीं होती। अभिलेखों और सिक्कों पर अंकित तिथियाँ घटनाओं के सटीक कालक्रम निर्धारण में सहायक होती हैं, जैसा कि अशोक के शिलालेख में देखा जा सकता है। इनका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों से होने के कारण ये अत्यंत विश्वसनीय माने जाते हैं। हालाँकि इनसे प्राप्त सूचनाएँ सीमित होती हैं, ये शासन, प्रशासन मुद्रा और भौतिक संस्कृति का बोध तो कराते हैं, परंतु समाज की मानसिकता, विचारधारा व दार्शनिक विकास का विस्तार नहीं बताते।

- पुरातात्विक स्रोत जैसे अभिलेख, सिक्के, मुहरें, मूर्तियाँ, स्मारक और उत्खनन से प्राप्त अन्य अवशेष प्राचीन भारत की ठोस और वस्तुनिष्ठ जानकारी प्रदान करते हैं। इनका महत्व इस कारण अधिक होता है, क्योंकि ये प्रत्यक्ष भौतिक साक्ष्य होते हैं, जिनमें साहित्यिक स्रोतों जैसे अतिशयोक्ति की संभावना नहीं होती। अभिलेखों और सिक्कों पर अंकित तिथियाँ घटनाओं के सटीक कालक्रम निर्धारण में सहायक होती हैं, जैसा कि अशोक के शिलालेख में देखा जा सकता है। इनका अध्ययन वैज्ञानिक पद्धतियों से होने के कारण ये अत्यंत विश्वसनीय माने जाते हैं। हालाँकि इनसे प्राप्त सूचनाएँ सीमित होती हैं, ये शासन, प्रशासन मुद्रा और भौतिक संस्कृति का बोध कराते हैं, परंतु समाज की मानसिकता, विचारधारा या दार्शनिक विकास का विस्तार नहीं बताते।

● साहित्यिक स्रोत में धार्मिक ग्रंथ जैसे वेद, पुराण, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य तथा लौकिक ग्रंथ जैसे कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कालिदास की रचनाएँ, संगम साहित्य आदि आते हैं। ये तत्कालीन समाज, धर्म, दर्शन, राजनीति और संस्कृति का समृद्ध और बहुआयामी दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। इनसे सामाजिक मानदंडों, रीति-रिवाजों और जनजीवन की ऐसी गहराई से जानकारी मिलती है, जो पुरातात्विक साक्ष्यों से संभव नहीं है। लेकिन इनकी सबसे बड़ी कमजोरी है कि ये अक्सर लेखकों की धार्मिक आस्था, दरबारी दायित्व या व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित होते हैं। साथ ही इनमें घटनाओं की सटीक तिथियों का अभाव होता है तथा पौराणिक कथाओं के साथ तथ्य मिश्रित होने के कारण ऐतिहासिक सत्य को अलग करना कठिन हो जाता है।

● विदेशी यात्रियों के विवरण जैसे मेगस्थनीज़ (इंडिका), चीनी भिक्षु फाह्यान और ह्वेनसांग तथा अरब विद्वान अलबरूनी (किताब-उल-हिंद) प्राचीन भारत का बाहरी और अपेक्षाकृत तटस्थ दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। ये समकालीन या प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण अत्यंत मूल्यवान हैं और भारतीय घटनाओं को विश्व इतिहास से जोड़कर कालक्रम निर्धारित करने में मदद करते हैं। वे भारतीय समाज की उन बातों पर भी प्रकाश डालते हैं, जिन्हें स्थानीय लेखक साधारण मानकर छोड़ देते हैं। हालाँकि, यात्रियों की भाषा और संस्कृति की सीमित समझ, व्यक्तिगत पूर्वाग्रह और कई बार सुनी-सुनाई बातों पर आधारित विवरण इनके पूर्ण वस्तुनिष्ठ होने में बाधक बन जाते हैं।

स्रोत	**उदाहरण**	**विशेषताएँ**	**सीमाएँ**
पुरातात्विक	शिलालेख, सिक्के, मूर्तियाँ, स्मारक	प्रत्यक्ष, प्रमाणिक, काल निर्धारण में सहायक	साक्ष्य, सीमित, व्याख्या जटिल
साहित्यिक	वेद, पुराण, उपनिषद, बौद्ध ग्रंथ, जैन ग्रंथ आदि	धार्मिक, सांस्कृतिक व सामाजिक दृष्टिकोण	अलंकरण, पक्षपात, महिमामंडन, भ्रांति की आशंका
विदेशी यात्रियों का विवरण	मेगस्थनीज़, फाह्यान, ह्वेनसांग, अलबरूनी आदि के यात्रा वृत्तांत	तटस्थ/बाहरी दृष्टिकोण, तुलनात्मक आकलन	सीमित सूचना, सांस्कृतिक भिन्नता के कारण सीमित समझ

निष्कर्षतः प्राचीन भारतीय इतिहास का संतुलित और प्रामाणिक पुनर्निर्माण तभी संभव है, जब पुरातात्विक, साहित्यिक और विदेशी स्रोतों को परस्पर पूरक और तुलनात्मक दृष्टि से मिलाकर देखा जाए, ताकि प्रत्येक की कमियों को दूसरे की सहायता से पूरा किया जा सके।

प्रश्न : पुरापाषाण काल के औजारों और स्थानों का विवरण देते हुए उसके महत्व की विवेचना कीजिए।

उत्तर : पुरापाषाण काल अर्थात् पुराना पत्थर युग, मानव इतिहास का सबसे लंबा और प्रारंभिक चरण था। इसी युग में हमारे पूर्वजों ने पत्थर के औजार बनाना और उनका उपयोग करना सीखा जिससे वे अपने अस्तित्व को सुरक्षित रख सके। इन औजारों और उनसे जुड़े स्थलों से हमें उस समय के मानव जीवन, उनकी तकनीकी प्रगति और पर्यावरणीय परिस्थितियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

इस युग के औजारों को उनकी बनावट और कालक्रम के आधार पर तीन प्रमुख चरणों में विभाजित किया जाता है–

निम्न पुरापाषाण काल–यह सबसे प्राचीन चरण था, जब औजार बड़े मोटे और साधारण होते थे। प्रमुख औजारों में हस्त-कुठार, गंडासा (चॉपड़) और विदारणी शामिल थे। ये औजार पत्थर के बड़े टुकड़े से बने होते थे तथा इनका उपयोग जानवरों की खाल उतारने, माँस काटने आदि कार्यों में होता था।

मध्य पुरापाषाण काल–इस काल में औजार बनाने की तकनीक और विकसित हुई। अब केवल टुकड़े ही नहीं बल्कि शल्कों से भी औजार बनाए जाने लगे जिसे फ्लेक तकनीक कहा जाता था। औजार पहले की तुलना में छोटे, हल्के और अधिक परिष्कृत थे। प्रमुख औजारों में खुरचनी, वेधनी और फलक शामिल थे, इनका उपयोग लकड़ी, छीलने, खाल साफ करने और शिकार के लिए भाले की नोक बनाने में होता था।

उच्च पुरापाषाण काल–यह सबसे विकसित चरण था। इस समय औजार पहले से तेज और विशेष प्रयोजनों के लिए बनाए जाने लगे। इस समय ब्लेड और ब्यूरिन जैसे औजारों के साथ-साथ हड्डी, सींग और हाथी दाँत से सुई, हारपून तथा सजावटी वस्तुएँ भी बनाई जाने लगी। इसी काल में आधुनिक मानव होमोसेपियन्स का उदय हुआ।

पुरापाषाणकालीन स्थल–भारत में पुरापाषाण काल के साक्ष्य अनेक स्थलों से मिले हैं, जो उस समय मानव की व्यापक उपस्थिति को दर्शाते हैं।

सोहन घाटी (वर्तमान पाकिस्तान)–यहाँ निम्न पुरापाषाण काल के गंडासा खंडक संस्कृति के औजार बड़ी मात्रा में मिले हैं।

भीमबेटका (मध्य प्रदेश)–विश्व धरोहर स्थल जहाँ गुफाओं और शैलाश्रयों से औजारों के साथ अद्भुत शैलचित्र भी प्राप्त हुए हैं।

अत्तिरपक्कम (तमिलनाडु)–भारत के सबसे पुराने पाषाण युग स्थलों में से एक, जहाँ मानव उपस्थिति लगभग 15 लाख वर्ष पुरानी मानी जाती है।

डीडवाना (राजस्थान)–यहाँ निम्न और मध्य पुरापाषाण काल के औजार मिले हैं, जो दर्शाते हैं कि यह शुष्क क्षेत्र भी उस समय मानव गतिविधियों का केंद्र था।

इन स्थलों के अलावा अन्य स्थल भी महत्वपूर्ण थे, जैसे कि बेलन घाटी (उत्तर प्रदेश), कुरनूल (आंध्र प्रदेश) हुँस्गी और बैछवाल (कर्नाटक) इत्यादि।

पुरापाषाण काल का महत्व–पुरापाषाण काल मानव विकास के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है–

(i) औजारों की जटिलता समय के साथ बढ़ती गई, जो मानव की सोचने, योजना बनाने और शारीरिक कौशल में प्रगति का संकेत देती है।

(ii) पत्थर के औजार मानव की पहली तकनीकी उपलब्धि थी, जिसने भविष्य की सभी तकनीकों की नींव रखी।

(iii) औजारों और स्थलों से हमें उस समय के शिकारी–संग्रहक जीवन, भोजन की आदतों और प्राकृतिक परिस्थितियों की जानकारी मिलती है।

(iv) उच्च पुरापाषाण काल की गुफा चित्रकारी और हड्डी के औजार यह दर्शाते हैं कि मानव केवल जीवित रहने तक सीमित नहीं था, बल्कि कलात्मक और प्रतीकात्मक सोच भी विकसित कर रहा था।

निष्कर्षतः पुरापाषाण काल के औजार और स्थल केवल पत्थर के टुकड़े या प्राचीन अवशेष नहीं थे, बल्कि वे मानव इतिहास की उस लंबी और संघर्षपूर्ण यात्रा के प्रथम अध्याय हैं, जिसने आधुनिक सभ्यता की नींव रखी। ये हमारे विकास, रचनात्मकता और अनुकूलन क्षमता की अनोखी गाथा को सजीव करते हैं।

प्रश्न : 'मध्यपाषाण काल, पुरापाषाण काल व नवपाषाण काल के बीच का संक्रांति काल था' समीक्षा कीजिए।

उत्तर : मध्यपाषाण काल को पुरापाषाण काल व नवपाषाण काल के बीच का संक्रान्ति काल कहा जाता है। क्योंकि इस काल में न तो पुरापाषाण की विशेषताओं का पूर्ण रूप से त्याग किया गया था और न ही नवपाषाण काल की विशेषताओं को पूर्णतया अपनाया गया था, यह काल दोनों ही कालों की विशिष्टताओं को समेटे हुए था।

इस मध्यवर्ती काल को पुराविदों ने अनु-पुरापाषाण काल, आद्य-नवपाषाणकाल आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया। कालांतर में इसका नाम मध्यपाषाणकाल नाम प्रचलित एवं लोकप्रिय हो गया। यह काल वह समय था जब शिकारी संग्राहक जीवन से कृषि और पशुपालन की ओर क्रमिक संक्रमण हुआ। मध्यपाषाण काल के उपकरण अपेक्षाकृत छोटे आकार के होते हैं, जिन्हें 'लघु पाषाण उपकरण' कहा जाता है। प्रमुख मध्यपाषाण काल के स्थलों में सराय नाहर राय, महदहा एवं दमदमा (उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जिले में), लंघनाज, लोटेश्वर (गुजरात) आदमगढ़ (मध्य प्रदेश), बगोर (राजस्थान) इत्यादि स्थल शामिल हैं।

मध्यपाषाण काल में पुरापाषाण और नवपाषाण काल की प्रमुख विशेषताएँ–

(i) पुरापाषाण काल में बड़े व भारी पत्थर के औजार प्रयुक्त होते थे, जबकि नवपाषाण काल में चिकने व घिसे औजार/मध्यपाषाणकाल में छोटे सूक्ष्म माइक्रोलिथिक औजार (तीर, खुरचनी ब्लेड) प्रयुक्त हुए, जिन्हें लकड़ी या हड्डी में जड़कर बहुउद्देश्यीय रूप से प्रयोग किया जाता था।

(ii) पुरापाषाण मानव पूर्णतः शिकार व खाद्य संग्रह पर निर्भर था, वहीं नवपाषाण में कृषि व पशुपालन का विकास हुआ। मध्यपाषाण काल में शिकार संग्रह प्रमुख रहा, लेकिन उसके साथ ही मछली पकड़ने, शहद संग्रह, हिरण का शिकार और प्रारंभिक कृषि के संकेत भी मिलते हैं। इसी काल में सर्वप्रथम कुत्ते को पालतू पशु बनाया गया था।

(iii) पुरापाषाण मानव गुफाओं में रहता था, जबकि नवपाषाण काल में स्थायी गाँव बसने लगे थे। मध्यपाषाणकाल में झोपड़ीनुमा अस्थायी निवास, झील नदी किनारे बस्तियाँ मिलती हैं।

(iv) हिमयुग की समाप्ति के पश्चात् गर्म व आर्द्र जलवायु में वनस्पति और पशु-पक्षियों की वृद्धि हुई, जिससे मानव की जीवनशैली बदलने लगी।

निष्कर्षत: मध्यपाषाण काल एक कड़ी की तरह है, जो पुरापाषाण काल की खानाबदोश जीवन शैली और नवपाषाणकाल की स्थिर कृषि आधारित जीवनशैली को जोड़ता है। यह वह समय था जब मानव ने पर्यावरण के बदलते स्वरूप के अनुसार अपनी जीवनशैली को अनुकूलित किया और भविष्य के लिए एक नए कौशल और तकनीकें विकसित की।

प्रश्न : 'प्राचीन भारतीय इतिहास में मानव जीवन की सुव्यवस्थित शुरुआत नवपाषाण काल से होती है' समीक्षा कीजिए।

उत्तर : मानव जीवन में प्रथम महत्वपूर्ण क्रांति नवपाषाण काल में उस समय हुई, जब कृषि और पशुपालन का शुभारंभ हुआ। इसके परिणामस्वरूप मानव खाद्य संचयक अवस्था से निकलकर खाद्य उत्पादक बना तथा साथ ही अनेकानेक सामाजिक, आर्थिक व प्रौद्योगिक परिवर्तन संभव हुए। इन परिवर्तनों के परिणाम इस कदर दूरगामी थे कि विद्वानों ने इसे नवपाषाण क्रांति की संज्ञा दी।

नवपाषाण काल की विशेषताएँ–

(i) नवपाषाण काल की सबसे बड़ी उपलब्धि कृषि का आविष्कार थी, क्योंकि इसके पूर्व मनुष्य शिकार और संग्रहण पर निर्भर था, लेकिन इस काल में उसने गेहूँ, जौ और चावल जैसे अनाज उगाना सीखा। उदाहरण के तौर पर मेहरगढ़ (पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत) से गेहूं-जौ की खेती के साक्ष्य तथा कोल्डिहवा (इलाहाबाद) से चावल की खेती के साक्ष्य का मिलना।

(ii) कृषि के साथ पशुओं को पालतू बनाना शुरू हुआ। इनमें कुत्ता, भेड़, बकरी, सुअर जैसे पशु पाले गए, इनसे दूध माँस और अन्य उत्पाद उपलब्ध हुए जिससे जीवन और व्यवस्थित हुआ।

(iii) कृषि और पशुपालन ने मानव को स्थायी रूप से बसने के लिए प्रेरित किया। घास-फूस व मिट्टी के घर बने, सामुदायिक जीवन का विकास हुआ और सामाजिक संरचनाएँ उभरने लगी उदाहरण के तौर पर बुर्जहोम और गुफकराल (जम्मू-कश्मीर) से गर्त आवास (अर्थात् जमीन खोदकर घर बनाना) तथा मध्य गंगाघाटी के कोल्डिहवा, चोपानी मांडो से घास-फूस की झोपड़ी के साक्ष्यों का मिलना।

(iv) कृषि उत्पादों को रखने व भोजन पकाने के लिए मिट्टी के बर्तन बनाए जाने लगे। चाक का प्रयोग हुआ और बर्तनों पर सजावटी चित्रकारी भी की गई।